यहवार्त्ता ज्योतिर्वित् प्रवर रामदास कवि वल्लभकृत ज्योतिः सारार्णव में लिखी है।

यथा—भूमिर्न स्पृश्यते यस्या अंगुल्याच कनिष्ठया।
भर्तृरं प्रथमं हन्यात् द्वितीयं चाभि नन्दति॥ (प्रथमतरंग)

अधिक क्या लिखें? जिस स्त्रीका उदर लम्बा, जंघा स्थूल और नाक स्थूल है, उसके शारीरिक विष संसर्ग से क्रम पूर्व्वक एक, दो, तीन, चार, पांच, छः, सात, आठ पुरुष नष्ट होते हैं, फिर विषका वेग शांत होनेसे नौमापुरुष सुखसे रहता है यह बात भी रामदासने अपने ग्रन्थ की पांचवी तरङ्ग में लिखी है। यथाः—

यस्यामध्यं भवेत् दीर्घं सा स्त्री पुरुष घातिनी।
भूमिर्न स्पर्शतेऽगुल्या सा निहन्यात् पतित्रयम्॥
प्रदेशिनी भवेत् दीर्घा सास्यात् सौभाग्य शालिनी।
ऊर्द्धा यस्या भवेत् दीर्घा पतिं हन्ति चतुष्टयम्॥
लम्बोदरी स्थूलजंघा स्थूल नासाच याभवेत्।
पतयोऽष्टौ म्रियेरन् सा नवमेतु प्रसीदति॥
विरला दशना यस्याः कृष्णाक्षी कृष्ण जिह्विका।
भर्त्तारं प्रथमं हन्ति द्वितीय मपि विन्दति॥
यस्या अत्युत् कटौ पादौ विस्तृतञ्च मुखं भवेत्।
उत्तरोष्ठेच लोमानि सा शीघ्रं भक्षयेत् पतिम्॥

अर्थ—जिस कन्या का मध्य देश दीर्घ होता है, वह पति घातिनी होती है, और जिसके पैर के बीचकी उङ्गली पृथ्वी का स्पर्श नहीं करती वहतीन पति नष्ट करती है। १।

जिस कन्याके पैरकी प्रदेशनी उङ्गली, बड़ी उङ्गलीकी अपेक्षा दीर्घ होगी, वह कन्या भाग्यवती होगी। किन्तु वही प्रदेशनी दीर्घ होकर यदि ऊपर को उठी होगी तो वह कन्या चार पति नष्ट करेगी। २।

जिस कन्या का उदर लम्बा, जंघा और नासिका स्थूल होगी, उसके आठ पति मरेंगे फिर नौमे पतिसे सुख पावेगी। ३।

जिस कन्या के दांत छीदे, नेत्र और जिह्वा कृष्ण वर्ण होगी, उसका प्रथम पति मर जायगा, और वह दूसरे पति को प्राप्त होगी ॥ ४ ॥

जिस कन्या के दोनों पैर ऊंचे अर्थात् तलुवे पृथ्वी को भली भांति स्पर्श नहीं करते, मुख फैला हुआ ठोड़ी के ऊपर रोम होते हैं, वह शीघ्र ही पति को संहार करती है ॥ ५ ॥

विष कन्याके औरभी अनेक प्रमाण मिलते हैं ॥

यथा--रिपुक्षेत्र गतौ तौतु लग्ने यदि शुभग्रहौ ।
क्रूरास्तत्र गतोऽप्येको भवेत्स्त्रीविषकन्यका १
भद्रातिथिर्यदा श्लेषा शतभिषाच कृत्तिका ।
आङ्गार रविवारेषु भवेत् स्त्री विषकन्यका २॥

अर्थ—जिस कन्या को जन्म लग्न में दो शुभग्रह हों, और इन शुभग्रहों का वही लग्न स्थान शत्रुका गृहहो, तथा एक क्रूरहो तो वह विष कन्या होगी । उसके विष संसर्ग से स्वामी नहीं बचेगा ॥ १ ॥

मङ्गल या रविवार में, द्वितीया, सप्तमी वा द्वादशी तिथि में, तथा श्लेषा शतभिषा वा कृत्तिका नक्षत्र के योग में जिस कन्याका जन्म होगा, वह विष कन्या होगी उसके विष संसर्ग से पति नहीं बचेगा ॥ २ ॥

ऐसी विष कन्या सर्वाङ्ग सुन्दरी होनेपरभी उसके विष संसर्ग से पुरुष अकाल में ही कालके गाल में जायगा इसमें सन्देह नहीं ।

विष कन्या में मारक शक्ति है यह निश्चय जान करके ही महा नन्देश्वर के मन्त्री राक्षसने चन्द्रगुप्तको मारनेके लिये परम सुन्दरी विष कन्या भेजीथी, मुद्रा राक्षस ग्रन्थ में इसका प्रत्यक्ष प्रमाण मिलता है ।

पूर्वोक्त रीति से विष कन्या की परीक्षा करना आजकल के समय में कठिन बात है । किन्तु जीवन सब चाहते हैं मरना कोई नहीं चाहता, इसका निश्चय करके ही त्रिकालदर्शी लोक हितैषी महात्मा ऋषियोंने संक्रामक विष दोपसे मनुष्यों की रक्षा करने के लिये बाल विवाह की प्रथा चलाई ।

बालिका अवस्था में विवाह होनेपर, पूर्वोक्त विष दोषकी संभावना नहीं रहती; जैसे अपक्व अज्ञात सार विषवृक्ष के विष भक्षण से कुछ क्लेश होता तो है, किन्तु कच्चे विष भक्षणसे प्राण नहीं जाते देखा गया

है कि, थोड़ा २ आरम्भ करने के उपरान्त अहिफेन (अफीम) भी अभ्यास युक्त खाने वाले को नहीं मार सक्ता, उसी प्रकार जिस वालिका के शरीर में विषका अंकुर मात्र उत्पन्न हुआ है, उस नव विवाहिता वालिका वधू के संसर्ग से श्वशुर देवर और स्वामी को विष दोष नहीं मार सक्ता है।

प्राचीन कालमें ऐसा ही व्यवहार था, किसी २ देशमें आजकल भी यही व्यवहार देखने में आता है।

नव विवाहित वालिका वधू पतिके गृहमें आकर कुछ दिनोंतक किसी के सङ्ग भी वात चीत नहीं करती, कन्या के समान सास के निकट ही रहती है, सासके पासही सोती है, रजोदर्शन से पूर्व्व पति की शय्या पर नहीं जाती; तथा सास, सुसर की सेवा करती रहती है, उन के पैर धोने को जल लाना, घर लीपना, वर्त्तन मांजना, हल्दी पीसना, सास के सन्मुख वैठकर भोजन वनाना इत्यादि घर के काम ही करती रहती है। फिर भोजन वनाने के अनन्तर पति आदिकों को परोसती है, पतिका वचा हुआ भोजन करती है, सवके वस्त्र धोकर धूप में सुखाती है और फिर मध्यान्ह के समय में शरीर से लगने के कारण शरीर की गर्मी वस्त्रों में संयोजित कर के यथा स्थान में भले प्रकार धर देती है। ऐसेही वस्त्रादिकों के छोटे छोटे स्पर्श से अङ्कुरित देहका विष पति के शरीर में मिलकर क्रमानुसार उसकी प्रकृति में मिलता हुआ चलाजाता है और फिर किसी प्रकार का विघ्न नहीं करता।

इसी प्रकार प्रथम थोड़ा थोड़ा कर के अभ्यासहोजाने पर, वड़े संसर्गसे भी अनिष्ट की सम्भावना नहीं होती परन्तु अफीमखाने वालेकी भांति अभ्यस्त पुरुष को ही पुष्टि करती है।

मनुष्य के शरीर की विजली या गर्मी स्वभावसे ही सदा इधर उधर छिटकती रहती है, किन्तु आलाप गात्र स्पर्शादि संसर्ग से पाप नामक शरीर का विष उक्त विजली के वेगके सङ्ग एकके शरीर से दूसरे के शरीर में प्रवेश करजाता है, यह " वार्त्ता प्रायश्चित्त विवेक के " पतित संसर्ग प्रकरणमें छागलेय आदि महर्षि गणों ने भली भांति समझादी है।

आलापाद् गात्र संस्पर्शान्निश्वासात् सह भोजनात्।
सहशय्यासनाध्यायात् पापं संक्रमतेनृणाम्॥ (छागलेय)

परस्पर आलाप, स्पर्श, निःश्वास, एकत्र शयन, उपवेशन और

भोजन, एकत्र अध्यापन इत्यादि संसर्ग से एक शरीर का पाप रूप विष दूसरे शरीर में मिलजाता है।

संलापस्पर्श निःश्वास सहशय्यासनाशनात्।
याजनाध्यापनात्योनात् पापंसंक्रमतेनृणाम्॥ (देवल)

परस्पर आलाप, स्पर्श, निःश्वास, एकत्र शयन, उपवेशन और भोजन याजन, अध्यापन, और योनि संसर्ग से एक शरीरका पाप विष दूसरे शरीर में प्रवेश करजाता है।

आसनाच्छयनाद् यानात् भाषणात् सह भोजनात्।
संक्रामन्तिहि पापानि तैल विन्दु रिवाम्भसि॥ (पराशर)

जलमें तेलकी बूंद गिरतेही जिस प्रकार चारों ओर को फैल जाती है, उसी प्रकार समीप वैठने से, एक साथ सोनेसे, सवारी में वैठने से वातचीत करने से और एक सङ्ग वैठकर भोजन करने से एक शरीरकी पाप वृत्ति फैलकर दूसरे शरीर में प्रवेश करजाती है।

इस कारण दुरागमन से पूर्व स्त्री के सङ्ग गुरुतर संसर्ग न करे, निर्णयसिन्धु ग्रन्थ इस विषय में विशेष सावधान करताहै। यथा,

प्राग्रजो दर्शनात् पत्नीं नेयाद्गत्वा पतत्यधः।
वृथाकारेण शुक्रस्य ब्रह्महत्या मवाप्नुयात्॥

किन्तु रजोदर्शन के उपरान्त शास्त्रानुसार गुरुतर संसर्गसे भी स्त्री के शरीर में प्राप्त हुए सञ्चित दोष से पति नहीं आ[illegible] होता इस विषय में मनुजी कहते हैं कि

स्त्रियः पवित्र मतुलं नैता दूष्यन्ति कर्हिचित्।
मासि मासि रजस्तस्या दुष्कृता न्यप कर्षति॥

प्रतिमासमें रजः स्राव के सङ्ग स्त्रीके देहमें सञ्चित हुआ स[illegible] दोष निकलने से उस समय उसका शरीर निर्दोष होता है।

किन्तु जब तक रज निवृत्त नहीं होता है, तब तक उस शरीर का दोष चारों ओर को फैला रहता है, उस समय भी संसर्ग महान् अनर्थ का कारण है, इसी लिये याज्ञवल्क्य महर्षिगण और सुश्रुत आदि आयुर्वेदाचार्य गण विशेष साव[illegible] करगये हैं। यथा—

नोप गच्छेत् प्रमत्तोऽपि स्त्रियमार्त्तव दर्शने ।
समान शयने चैव न शयीत तया सह ॥
रजसाभि प्लुतांनारीं नरस्य ह्युप गच्छतः ।
प्रज्ञा तेजो बलं चक्षु रायुश्चैव प्रहीयते ॥
तां विवर्ज्जय तस्तस्य रजसा समभिप्लुताम् ।
प्रज्ञातेजो बलं चक्षु रायुश्चैव प्रवर्द्धते ॥ (मनु)

रजो धर्म्म को प्राप्त हुई स्त्रीके समीप कदाचित्भी न जाय और एक शय्यापर उस के सङ्गभूलकर भी उस अवस्था में शयन न करे ।

जो मनुष्य रजो धर्म्म को प्राप्त हुई स्त्रीके समीप जाता है, उसकी बुद्धि, तेज, वल, नेत्र और आयु नष्ट होती है ।

और जो बुद्धिमान मनुष्य रजो धर्म को प्राप्त हुई स्त्री से अलग रहता है, उसकी बुद्धि, तेज, वल, नेत्र और आयु की वृद्धि होती है ।

इसकारण कुलीन स्त्रियों को चाहिये कि रजोधर्म प्राप्त होनेपर तीन दिन विशेप सावधानीसे रहैं, उन दिनों में किसी को स्पर्श न करै, किसी के सङ्ग हँसे बोले नहीं, तेल न मले, आभूषण न पहरे, स्नान न करे, एक समय भोजन करे, दुग्धादि वलकारक पदार्थ नहीं खाय, धातुके पात्रमें भोजन न करे, मट्टी के या केले के पात्रपर भोजनकरे, उत्तम शय्यापर न सोवे, दूसरे के वस्त्रों से अपने वस्त्र न मिलावे यदि मिल जांय तो उनको धोकर व्यवहार में लावे, दैवयोगसे रजस्वला स्त्री यदि किसी को स्पर्श करले, तो उसको चाहिये कि, जो वस्त्र धारण कररहाहो, उनके सहित स्नान करे और तुलसी दल, गंगाजल विष्णु भगवानका चर्णोदक पान करे, तब रजस्वला के स्पर्श दोपसे मुक्त होगा ।

इसके विपरीत चलने से और गुरुतर संसर्ग से मनुष्य स्त्री के दैहिक दोपसे आक्रान्त होकर दिन २ अनेक प्रकार के रोगोंसे ग्रसित रहैगा, शरीर मन निस्तेज होगा और अकाल में काल कवलित होगा ।

स्त्रीधर्मिणी त्रिरात्रन्तु स्वमुखं नैव दर्शयेत् ।
स्ववाक्यंश्रावयेन्नापि यावत्स्नानान्नशुद्ध्यति ॥ (याज्ञवल्क्य)

रजस्वला होनेपर स्त्री को चाहिये कि तीन दिन तक अलग रहै और अपना मुखभी किसी को न दिखावे तथा जब तक स्नान से शुद्ध नहो तवतक किसी से वात चीत भी न करे ।

वर्ज्ययेन्मधुमांसंच पात्रे खर्वेच भोजनम् ।
गन्धं माल्यं दिवास्वापं ताम्बूलं चास्य शोधनम् ॥(अत्रि)

अत्रि ऋषि कहते हैं कि, रजो धर्म को प्राप्त हुई स्त्री को चाहिये कि वह मधु, मांस, धातु के पात्र में भोजन, सुगन्धी वस्तु शरीर में लगाना, उवटन, पुष्पों की मालाधारण करना दिनमें सोना, ताम्बूल भक्षण और मिस्सी लगाना छोड़दे ।

आहारं गोरसानाञ्च पुष्पा लङ्कार धारणम् ।
अंजनं कङ्कतं दन्ताः पाठ शय्याधि रोहणम् ॥
अग्निसंस्पर्शनञ्चैव वर्जयेच्च दिनत्रयम् । (विष्णुधर्मोत्तर)

विष्णुधर्मोत्तर ग्रन्थ में लिखाहै कि, रजस्वला को चाहिये कि वह तीन दिन तक वलकारक दुग्धादि पदार्थ, फूलों के गहने आंखों में अञ्जन, दांतों में मिस्सी, पढ़ना, शय्यापर वैठना और अग्निको स्पर्श करना त्यागदे ।

दिवा कीर्त्ति मुदक्यञ्च पतितं सूतिकांतथा ।
शवं तत् स्पृष्टिनञ्चैव स्पृष्ट्वास्नानेनशुद्ध्यति ॥ (मनु

रजस्वला स्त्री, पतित, सूतिका स्त्री, शव, तथा शवको स्प करने वाले, का स्पर्श करने पर स्नान करने से मनुष्य शुद्ध होता।

रजोदर्शन तो दोषात् सर्व मेव परित्यजेत् ।
सर्वैरलक्षिता शीघ्रं लज्जिनन्तर गृहे वसेत् ॥
एकाम्बरा कृतादीना स्नाना लङ्कार वर्जिता ।
मौनी न्यधो मुखी चक्षुः पाणि पद्भिः अचञ्चला ॥
अश्नीयात् केवलं भक्तं नक्तं मृडमय भाजने ।

स्वपेद्भूमावप्रमत्ता क्षपे देव महस्त्रयम् ॥
स्नायीत च त्रिरात्रान्ते सचैल मुदिते रवौ ।
क्षामालंकृतवाप्नोति पुत्रंपूजितलक्षणम् (व्यासजी)

व्यासजी महाराज कहते हैं कि, जब स्त्री रजोधर्म को प्राप्तहो, तब तीन दिन के लिये सब कामों को छोड़दे. इत्यादि यह वचन भी पूर्वोक्त वचनों के अनुसार ही है, इसी कारण इनका अनुवाद नहीं लिखा गया ॥

बस पूर्वोक्त ऋषियोंके वचनों से यह सिद्ध होताहै, कि स्त्री में विष है पूर्वोक्त महात्माओंकी आज्ञा उलंघन करके जो मनुष्य रजस्वला स्त्री से संसर्ग करता है, वह निश्चयही जीवन पर्यन्त मानसिक और शारीरक सुखोंसे वञ्चित रहता है ।

इसकारण मनुष्य की इच्छा यदि निरोग दीर्घ जीवन प्राप्त करके सुखसे समय व्यतीत करने की हो, तो यौवनअवस्थाके स्त्रङ्ग सङ्ग स्फुट भाव से ;विष वेग उच्छलित हो उठने पर अधिक, अवस्था वाली कन्याका पाणिग्रहण न करे, किन्तु पूर्वोक्त विषके कराल कवल से आत्म रक्षा करनेके निमित्त बाल्यावस्थामें ही विवाह करना योग्य है।

अतएव संसारके कल्याणार्थ त्रिकालज्ञ आर्य कुलावंतश अनेक धर्म तत्व वेत्ता और शरीर तत्व वेत्ता महात्मा लोग एक स्वर से कह गये हैं कि, आठ, नौ, दश वर्ष की कन्याका विवाह करनाही उत्तम है । यौवनवती कन्या का विवाह करना वारंवार शपथ पूर्वक निषेध कर गये हैं ।

अतएव बाल विवाह भली भांति से युक्ति युक्त धर्म मूलक और विज्ञान प्रसूत है या नहीं; इसबात का विचार चिन्ता शील विद्वान लोगही करसक्ते हैं ।

मैं यह नहीं कहता कि, मेरे दिखाये हुए प्रमाण और युक्तिही बाल विवाह में एक मात्र, यथेष्ट कारण हैं, किन्तु विचार शील विद्वानों को विचार करने के निमित्त इससे यत् किंचित् भी सहायता मिलेगी, तो मैं अपने परिश्रम को सफल मानूगा इसकी अपेक्षा और भी अनेक सूक्ष्म कारण होंगे, किन्तु वे मेरी समान स्थूल बुद्धि की बुद्धि से परे हैं ।

कोई२ बालविवाहमें यहभी कारण बतातेहैं, कि युवाअवस्थामें स्त्रि के मनकी चंचलता अत्यन्त प्रबल होजातीहै, उसचंचलताके रोकने

समार्थ प्राय: उनमें नहीं होती, इसकारण से वे कुमार्ग गामिनी होकर पिताके कुलको कलङ्कित करडालती हैं, इसलिये रजोधर्म से पहले ही कन्याका विवाहकर देना उचित है। शाक्तानन्द तरङ्गिणी के ज्ञान भाष्य में भगवान् शंकर स्वामी ने इसही मतकी पुष्टि की है।

यथा--रजस्वलाचयानारी विशुद्धापञ्चमे दिने।
पीडिताकामवाणेन ततः पुरुष मीहते॥

अर्थ—रजस्वला स्त्री पांचवें दिन शुद्ध होकर कामदेव के बांण से पीड़ित हो पुरुष की इच्छा करती है।

यद्यपि अनेक अनिवार्य कारणों के बन्धन में आकर रजोवती स्त्री इच्छा होनेपर भी कुपथ गामिनी न हो किन्तु कुप्रवृत्ति की उत्तेजनासे, अस्वाभाविक उपाय द्वारा अपनाही आर्त्तव जरायु में प्रवेशितकर हंस के संयोग विना भी हंसी के असार अंडेकी भांति, सर्प वृश्चिक कुष्भांडाकार आदि विकृत प्रसव उत्पन्न कर सक्ती है। यह अत्यन्त निन्दनीय है। ऐसी घटना आजकल भी सुनने में आती हैं।

इसलिये पुष्पवती होनेसे कन्या का विवाह करना योग्य है प्रकृति के विरुद्ध पूर्वोक्त गर्भ के विषय में शारीरिक तत्ववेत्ता भगवान् सुश्रुताचार्य शरीर स्थान के दूसरे अध्याय में कारण निर्देश पूर्वक उपदेश देगये हैं * ।

ऋतुस्नानातु या नारी स्वप्ने मैथुन माचरेत्।
आर्त्तवं वायु रादाय कुक्षौ गर्भ करोतिहि॥
मासि मासि विवर्द्धेत गर्भिण्यां गर्भ लक्षणम्।
कललं जायते तस्या वर्जितं पैत्रिकैर्गुणैः॥
सर्प वृश्चिक कूष्माण्ड विकृता कृतयश्चये।
गर्भास्त्वेते स्त्रियश्चैव ज्ञेयाः पाप कृताभृशम्॥

---

* यदा नार्यां वुपेयातां वृषस्यन्त्यौ कथञ्चन।
मुञ्चन्त्यौ शुक्रमन्योन्य मनास्थिस्तत्र जायते॥

कोई २ बालिका विवाह में यह युक्ति देते हैं कि, बालिका अवस्था में विवाह होने से, वधूको सिखा भलाकर सुसराल में रहने योग्य बनाया जासक्ता है और तवहीं वह अपने जीवनको सुखसे वितावैगी, तथा घरके काम भलीभांति करके पुत्र वधू घरकी लक्ष्मी होसकेगी। ऐसा न होने से वही वधू यदि धनवानकी लड़ैती कन्या है, और उसके काम काज के लिये दास दासी नियुक्त होंगे तो वह घर के कामों को दास दासियों का काम जानैगी, भोजन बनाना ब्राह्मणका काम समझेगी, केवल मोजे बुनना, उपन्यास पढ़ना, शरीर साफ रखना, बालों को सम्हालना, उबटन लगाना, गहने पहरना, दिन में तीन बार वस्त्र और कञ्चुकी बदलना इत्यादि कामों कोही वधू का अवश्य कर्तव्य कर्म जानेगी, वह अधिक अवस्था वाली कन्या " वहू " न होकर खास वन के सामन्य धनवाली सुसराल में जायकर मिट्टी की मूरत बनकर केवल घरकी शोभाही बढ़ावैगी। उस स्त्री के द्वारा, घर के कामों में स्वामी को कितनी सहायता मिलेगी ? यह बात मनीषि मात्रके विचारने योग्य है। मेरी समझ से तो उसका जन्मभर दुःखसे ही बीतेगा, और दोनों में प्रीति न होगी। इस निमित्त ही बाल विवाह युक्ति युक्त है।

इस समय अनेक प्रश्न करसक्ते हैं कि, अनार्य्य जाति रजस्वला का कुछ विचार नहीं करती और वह स्वस्थ तथा दीर्घजीवी देखी जाती है। यह बात सत्य है। किन्तु इस बातको विचार कर देखना उचित है कि, किसका शरीर किस जाति के उपादान से बना है। जिस जाति का भोजन रजोगुण और तमोगुण को बढ़ाने वाला है, जो लोग पहले से मांस, लहसन और प्याज खाते चले आते हैं, उनके शरीर में तमोगुणको बढ़ाने वाला अपवित्र संसर्ग हितकारी होगा, अहितकारी नहीं होसक्ता और रजस्तमो गुण प्रधान शरीर में सात्विक संसर्ग वा सात्विक भोजन अनिष्ट कारक होगा। जैसे घृत अत्यन्त पवित्र और आयु को बढ़ाने वाला है किन्तु इसी घृत को यदि नियम से किसी कुत्तेको भोजन कराया जाय, तो छः महीने में ही वह कुत्ता मरजायगा परन्तु दुर्गन्धि उक्त मल मूत्रादि के भोजन से हृष्ट पुष्ट और बलवान होता है। क्योंकि कुत्तेका शरीर इस जाति के ही उपादान से बना है। सुनाहै कि नगजाति के लोग घृत स्पर्श करने पर हात धोते हैं और गले सड़े मच्छ को अत्यन्त सुन्दर समझ कर खाते हैं। अतएव अनार्य्यों के सम्बन्ध में यह प्रश्न हो नहीं होसक्ता या आर्य्यशास्त्र अनार्य्यों का

दायी नहीं है और यदि है तो उनके लिये भी कोई न कोई विधान हो सक्ता है, किन्तु वह यहां आलोच्य नहीं।

सिद्धान्त यह है कि, आर्य्य ऋषि मनुष्योंके कल्याणार्थ ऐसा विचार कर गये हैं कि, उस को सुनकर अनार्य्य लोग अचम्भा करते हैं हिन्दू शास्त्र में पति पत्नी का एकाङ्गीभूत सम्बन्ध है, पति की देहार्द्ध भागिनी पत्नी है और पत्नी का देहार्द्ध भागी पती है। इन देहों की एकता, मन्त्र बलसे हो जाती है। सोही विवाह के मन्त्रमें कहा है कि, (यदे तद्धृदयं तव तदस्तु हृदयं मम, यादिदं हृदयं मम तदस्तु हृदयं तव इत्यादि) जो तेरा प्राण है, वही मेरा प्राण है, जो तेरा हृदय है वही मेराहृदय है।

शास्त्र में कहा है कि, वर अपने गोत्रकी, प्रवरकी और मामा के गोत्र की (१) कन्या के सङ्ग विवाह न करे। यदि करेगा तो उस के गर्भ से जो पुत्र उत्पन्न होगा, वह चाण्डाल की भांति नृशंस और दुष्ट प्रकृति होगा। क्योंकि, अपने गोत्र और प्रवर के रक्त संयोग के विरुद्ध गुणसे दुष्ट प्रकृति पुत्र जन्मलेगा यह वस्तु का स्वभाव है।

---

(१) समान गोत्रप्रवरां समुद्वाह्योप गम्यच ।
तस्यामुत्पाद्य चाण्डालं ब्राह्मणा देवहीयते ॥
असगोत्रा च या मातुरस गोत्रा च या पितुः ।
सा प्रशस्ताद्विजातीनां दारकर्म्मणि मैथुने ॥
सप्तमीं पितृपक्षाच्च मातृ पक्षच्च पञ्चमीं ।
उद्वहेतद्विजो भार्य्यां न्यायेन विधिना नृप ॥
पितुः पितुस्वसुः पुत्राः पितुरस्मातुः स्वसुः सुताः।
पितुर्म्मातुल पुत्राश्च विज्ञेया पितृबान्धवाः ॥
आत्मतातस्वसुः पुत्राआत्म मातुः स्वसुः सुताः।
आत्ममातुलपुत्राश्च विज्ञेया आत्मबान्धवाः ॥
मातुर्म्मातुः स्वसुःपुत्रा मातुर्म्मातु स्वसुः सुता ।
मातुर्मातुल पुत्राश्च विज्ञेया मातृ बान्धवाः ॥

जैसे चूना और हल्दी मिलाने से लालिमा उत्पन्न होजाती है यह वस्तु का स्वभाव है। इसहभांति ऐसा विवाह करने वाला ब्राह्मण भी सत्व गुणको खोकर पशु प्रकृति को प्राप्त होगा।

विवाह सम्बन्ध में अपनी अपेक्षा पितृपक्ष में सात और मातृपक्ष में पांच, पितृ वन्धु पिताकी वुआका पुत्र, मातृ बन्धू — मामाका पुत्र और अपना वन्धु, अपनी बुआका पुत्र, मामा का पुत्र आदि पुरुष वर्ज्जनीय है इनके कन्या के सङ्ग विवाह करना अत्यन्त वर्ज्जित है अतएव आज कल जाति के विवाह विषय में "सम्बन्ध „ शब्द का प्रयोग अचल हो रहा है। संवन्ध अर्थमें संसर्ग है, यथा इस कन्या के सङ्ग इसवर का सम्बन्ध होसक्ता है या नहीं इत्यादि।

यह सूक्ष्म विचार द्विजाती के ही पक्षमें है। तमः प्रवृत्ति शूद्रके पक्ष में नहीं है। शूद्र समान गोत्रकी कन्या के सङ्गभी विवाह करसक्ता है, उससे उसका अनिष्ट नहीं होगा। किन्तु इस वर्ण को भी उपरोक्त धर्मका पालन करना योग्य है।

यहां एक प्रश्न उठता है कि, जब पिता के पक्षके सात और माता के पक्षके पांच पुरुष वार्ज्जित हैं, तव संसार को शिक्षा देनेके निमित्त आये हुए भगवान् श्री कृष्णचन्द्र ने अपनी भगिनी सुभद्राको बुआ के पुत्र अर्ज्जुन के सङ्ग क्यों विवाह दिया और अर्ज्जुन ने भी अपने मामा की कन्या के सङ्ग क्यों विवाह किया, भगवान् श्रीकृष्णने तो, आपही गीता में कहा है कि,

यद्‌यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरोजनः।
सयत् प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनु वर्त्तते॥

अर्थ—हे अर्जुन श्रेष्ठ मनुष्य जो आचरण करते हैं, समाज में अपरा पर मनुष्य भी वही आचरण करतेहैं; श्रेष्ठ मनुष्य जो यातप्रमाण रूपसे ग्रहण करते हैं, अन्यान्य लोग भी उसीका अनुसरण करते हैं।

तो उन्होंने जान बूझकर क्यों शास्त्र विरुद्ध, धर्म विगर्हित अनार्यो चितकार्य किया? तथा प्रद्युम्नने मामा रुक्मी की कन्या, अनिरुद्ध ने रुक्मी की पौत्री से क्यों विवाह किया! (१) और भीमसेन ने द्विजाति क्षत्रिय होकर मांस भोजी वनचर अनार्य जाति राक्षसकी कन्या "हिडिम्बा" का क्यों पाणिग्रहण किया? ऐसा करने से समाज में भीमसेनकी निन्दाहुई हो, सो कहीं देखने में नहीं आती।

यह प्रश्न कठिन है और विचारने योग्य है।—हम इस प्रश्न के उत्तर में यह कह सक्ते हैं कि, दक्षिण देशमें मामा की कन्या से, त

बुआ की कन्या से विवाह करना दोष जनक नहीं क्योंकि उस देशके जल वायु और मृत्तिका के गुणसे इसप्रकार के विवाह से दूषित सन्तान नहीं उत्पन्न होती । इसी कारण उक्त विवाह उसदेश में देशाचार रूपसे प्रामाण्य हुआ है । यहबात प्राचीन " गोविन्दार्णव " ग्रन्थ के सँस्कार वीचि अध्याय में दिखाई गई है ।

यथा—"दक्षिणतस्तावत् अनुपनीतेन सह भोजनम् भार्य्यया सह भोजनम् पर्य्युसित भोजनं मातुल पितृ-ष्वसृ दुहिता परिणयश्च ,,

येषां परम्पराः प्राप्ताः पूर्वजै रप्य नुष्ठिताः ।
त एव तैर्न दूष्येयू राचारैर्नेतरे पुनः ॥ (आपस्तम्ब)
यस्मिन् देशेय आचारो न्याय दुष्टस्तु कल्पितः ।
तस्मिन्नेव स कर्त्तव्यो देशाचारः स्मृतो हिसः (देवल)

अर्थ—दक्षिण देशमें विना यज्ञोपवीत हुए बालक के सङ्ग भोजन स्त्री के सङ्ग भोजन, वासीअन्नभोजन, मामा की कन्या के सङ्ग विवाह करना देशाचार होनेके कारण दूषित नहीं है ।

आपस्तम्ब ऋषिभी यही कहते हैं—कि जिसका जो आचार व्यवहार परंपरा क्रम से चला आता हो , उसके करने में वह दूषित नहीं होता, किन्तु जो अन्य पुरुष उसको करते हैं , वे दोष भागी होते हैं । इसी प्रकार देवल ऋषि भी कहते हैं कि , युक्ति द्वारा जिस देश में जो आचार कल्पित हुआ है , उस देश में ही उसका व्यवहार करना चाहिये , क्योंकि वह देशाचार होने से प्रामाण्य है ।

दक्षिण देश में लोकाचार होने के कारणही अर्ज्जुन ने ऐसा किया होगा । किन्तु उपरोक्त सिद्धान्त सर्व्व साधारण , प्यारा नहीं लगेगा इस लिये महामहोपाध्याय वाचस्पति मिश्र ने अपने " द्वैत निर्णय ग्रंथ के द्वादश पुत्र प्रकर्ण में इस जातीय प्रश्न को उठाया है ।

" हन्ति तर्हि युधिष्ठिरः कथमश्वमेध मकरोत् न हि स कस्याप्यौरसः ,, कुन्ती वा कथं त्रीन् पुत्रान् उपाद यतीति ,,

अर्थ— हां ? युधिष्ठिर के किस प्रकार अश्वमेध यज्ञ करता हुआ ; अश्वमेध को तो औरस पुत्र ही करसक्ता है क्षेत्रज पुत्र नहीं करसक्ता युधिष्ठिर पाण्डु का औरस पुत्र नहीं था — फिर उसने अश्वमेध कैसे किया — और कुन्ती ने नियोग विधि से एक पुत्र उत्पन्न करने के नियम को उल्लंघन कर तीन पुत्र कैसे उत्पन्न किये ? इस के उत्तर में उन्हों ने कहा है कि, " चेत् ते हि देव कल्पास्तेन न तेषामाचारः पुरस्करीयो न वा तिरस्करणीयः " ॥

तदुक्तं—कृतानि यानि कर्म्माणि दैवयै मुनि भिस्तथा। नाचरेत्तानि धर्मात्मा श्रुत्वाचापि न कुत्सयेत् ॥

उक्त प्रश्न ठीक तो है , किन्तु उसका सिद्धान्त यही है कि, युधिष्ठिर और कुन्ती आदि देव तुल्य थे , इसलिये उनके आचरण का तिरस्कार वा पुरस्कार करना उचित नहीं।

अन्य ऋषि लोग भी यही कहते हैं कि—देवता और मुनि लोग जिस कर्म्म को करैं , धार्मिक लोग वह न करें , तथा इस प्रकार के विरुद्ध कर्म्म को सुनकर देवता और मुनियों की निन्दा भी न करें।

वाचस्पति मिश्र, के इस सिद्धान्त से हम यह समझे कि, " तेजीयसां नदोषय वन्हेः सर्व्व भुजो यथा ,, सर्व्व भक्षी हुताशन को जैसे अभक्ष्य वस्तु भक्षण करना दोष नहीं है , उसी प्रकार तेजस्वी पुरुषोंके पक्षमें वह दोष नहींहै।

तेजस्वी का अर्थ है कि, जिन का सत्वा नल प्रदीप्त है. सत्व गुण जिन के शरीर में अधिक प्रमाण से रहता है , उन के ऊपर ऐसा दुष्क्रिया अर्थात् क्षेत्रज पुत्र होकर युधिष्ठिर का अश्वमेध यज्ञ करना, कुन्ती का तीन सन्तान उत्पन्न करना, अर्जुन का मामा की कन्या के सङ्ग विवाह करना या भीमसेन का राक्षसी के सङ्ग विवाह करना दूष्य नहीं है, क्योंकि वे देव तुल्य पुरुष थे। देवता सत्व गुण प्रधान होते हैं, ऐसे एक दो काम उनके सत्वानल में भस्म होजाते हैं।

किन्तु हम निस्तेज निःसत्व होकर यदि ऐसा शास्त्रविगर्हित कार्य्य करें, तो हमारे दैहिक और मानासिक दुःख का कुछ ठिकाना न रहै।

क्योंकि, हमने सामान्य सात्विक आहार और सामान्य जप तपस्या कायक्लेश से जितना कुछ " सत्व " सञ्चय किया है, ऐसे दुष्कर्म करने से उस सत्व के लुप्त होजाने पर फिर उस गुणका प्राप्त होना एक प्रकार असम्भव है और उसी दुष्क्रिया के फल से पशु प्रकृति होना सम्भव है।

लोक में भी यह वार्त्ता प्रसिद्ध है कि, जो काम देवता लोग करते हैं, वह उनकी लीला है केवल लोक में ही क्यों ! महर्षि वेदव्यास ने भी तेजस्वी बलवान बड़े लोगों के सम्बन्ध में लेखनी को सङ्कुचित् कर के कहा है कि. धनवान बड़े लोगों के सम्बन्ध में पाप पुण्य का कठोर विचार नहीं है ।

यथा--सर्वं वलवतां पथ्यं सर्वं बलवतां शुचिम् ।
सर्वं वलवतां धर्मः सर्वं वलवतां स्वकम् ॥(महाभारत)

इस कारण कृष्णार्जुनके ऊपर यह गर्हित आचरण धरना योग्य नहीं ।

आजकलभी संसारमें वलवान्की जय जय कार न्यून नहीं है । अधिक दिनों की वात नहीं कलियुगके आरंभ से हजार वर्ष के वीच में महाराजाधिराज वल्लालसेनने यौवन की प्रथम अवस्थामें अत्यंत जाति चांडाल की कन्यासे, फिर नटी की कन्यासे, फिर इसके कुछ वर्षवाद चमार की कन्यासे विवाह किया * फिर उसी गुणवान राजाने पवित्र कौलिन्य स्थापन और दान सागर आदि ग्रन्थों को वनाया, उस के ग्रन्थों को सवने माना, फिर वह समाजका नेताथा यानहीं ! इसी लिये कहा जाता है कि, वड़े लोगों को कुछ दोष नहीं होता ।

सिद्धान्त यह है कि, जाति में वड़े लोगों को कुछ हो वा नहो, किन्तु परलोक में तो यमदूतों के हाथके कोड़े लगेंहीं गे, तथा दूषित जाति की कन्याके सङ्ग विवाह करनेपर, उससे जो पुत्र उत्पन्न होगा, वह कभी उत्तम नहीं होगा । क्योंकि उक्त वल्लालसेनका ही चमारी

असेवि चण्डाल कन्या राज्ञाद्वादशवार्षिकी ।
नटी कन्याच सिद्धयर्थं पापण्ड मत वर्त्तिना ॥
(वल्लाल चरित, उत्तरखण्ड)

आचद्व मैव भवनीश्वर मां कुमारीं ।
वंशः कृते विधुभवः क्वच सन्तवोमे ॥
चर्मार कोरि तनया विदितास्मि लोके ।
जानीहि नास्मि भवता परिणेतु मर्हं ॥
(वल्लाल चरित, उत्तरखण्ड अध्याय ४)

से उत्पन्न हुआ पुत्र अपनी माता के प्रति ही अनुरागी हुआ (१) इसी लिये महात्मा ऋषि लोग विवाह सम्बन्ध में मनुष्यों के कल्याणार्थ इतना सूक्ष्म विचार करगये हैं। उनकी बात हमको भलेप्रकार मानकर चलना चाहिये। यदि उनकी बात न मानकर हम अपनी इच्छानुसार युवति विवाह, विधवा विवाह, सगोत्रा और सप्रवरा विवाह संसर्ग करेंगे, तो निश्चय ही संक्रामित विष दोषसे अकालमें मृत्यु के हाथ पड़ेंगे। वर्त्तमान में इसके दृष्टान्त अनेक हैं और ऐसे दुष्ट विवाह से उत्पन्न हुई सन्तान भी अनेक दोषों से आक्रान्त होकर गति को नीचे गिरावेगी।

इस समय अनेक जिज्ञासा करसक्ते हैं कि, उक्त प्रबन्ध में जो कुछ गुण दोष कहा गया है, वह सब संसर्ग से होता है, किन्तु संसर्ग क्या पदार्थ है! उस में क्या शक्ति है, उसके दोष गुण हम किस प्रकार जान सक्ते हैं सो भी समझा देना उचित है।

यह बात ठीक है, आज मैं इस बात के बताने में यथा साध्य चेष्टा करूंगा कि संसर्ग का क्या माहात्म्य है।

संसर्गमाहात्म्य ॥

संसर्ग माहात्म्य की व्याख्या करने से पहले अपने पाठकों को एक प्राचीन कथा सुनाते हैं—एक पथिक, मार्ग में वायु और मेघसे अत्यन्त पीड़ित होकर बस्ती अनुसन्धान कर रहाथा। उसने मार्ग से कुछ दूर पर एक गृहस्थ का घर देखा, अपने प्राण की रक्षाके निमित्त वह उस घर में चला गया। बाहर के घर में जाकर वहां धरी हुई वस्तुओं को देखकर उसने जान लिया कि यह किसी चमार का घर है, तो भी वह कुछ उपाय न देखकर उसी घर के भीतर चलागया।

पथिक ने भीतर जाकर देखा कि, एक छप्पर के बांस में लोहेका पींजरा टँगा हुआ है उसमें एक तोता बैठा है। तोतेने पथिक को देखते ही अपनी आँखें लाल करलीं और कठोर शब्द से बोला "कौन है रे तू! भाग साले यहां से; साले चोर भाग," पथिक ब्राह्मण था, वह पक्षी के कठोर शब्द न सह सका तथा उसी समय वहांसे चला गया। फिर चलते चलते कुछ दूर पर उसको और एक स्थान मिला, उस स्थान पर वह ज्योंही पहुँचा, त्योंही उस के कानों में एक अत्यन्त मनोहर शब्द पड़ा ' आइये महाशय, किधर से आना हुआ? आपके दर्शन

(१) मातरं यः कामयते दुरात्मा मां पतिव्रताम् (वल्लालचरित्र ४अध्याय)

से हम पवित्र होगये, अहो भाग्य जो आपसे महात्मा हमारे घर पधारे यह आसन है, विराजिये " पथिक इन अमृत मय वचनों को श्रवण करता हुआ घरमें घुसा और देखा कि, इन शब्दोंका बोलने वाला भी वैसा ही एक तोता है ।

पथिक उसको देखकर अत्यन्त विस्मित और आनन्दित हुआ तथा कहने लागा ' भाई शुक मैं देखता हूं कि, तुम और यहांसे कुछ दूर पर रहनेवाला पक्षी दोनों एक आकृति के हो, किन्तु, तुम दोनोंका स्वभाव अत्यन्त ही पृथक है । चमार के तोते ने मेरा विना कारण क्यों तिरस्कार । किया और तुम मुझको अपनी अमृत मयवाणीसे क्यों तृप्त करते हो ! इसका क्या कारण है !

उस समय शुक पथिक के कौतूहल को निवृत्त करने के निमित्त अपने दहिने चरण को उठाकर बोला—

मातात्येको पिताप्येको मम तस्यच पक्षिणः ।
अहं मुनिभिरानीतः सच नीतो गवाशनैः ॥
अहंमुनीनांवचनंशृणोमि गवाशनानांसशृणोतिवाक्यम्
नतस्यदोषोनचमेगुणोवा संसर्गजादोषगुणाभवन्ति ॥

अर्थ—हे पथिक ! मेरे और उस चर्मकार के घरमें रहने वाले पक्षी के माता पिता एकही हैं; किन्तु दैवकी प्रेरणा से मुझे महात्मा मुनीश्वर लेआये और उसको चर्मकार लेगया, वह पक्षी सदा चमारों की ही बात चीत सुनता है इसमें मेरा गुण और उसका दोष मत जानो । क्योंकि संसर्ग सेही दोष और गुण होते हैं ।

इस आख्यायिका से यह ज्ञात होता है कि, संसर्ग की शक्ति मनुष्य परतो अपना प्रभाव डालती है किन्तु संसर्ग जनित दोष गुण पशु पक्षियों में भी लगते हैं ।

यहांपर स्वतःही मनमें यह प्रश्न उठता है कि, संसर्ग में दोष क्या हैं और गुण क्या हैं ! क्यों संसर्ग के द्वारा गुण या दोष की उत्पत्ति या नाश होजाता है ।

यह विषय समझना या समझाना उचित है यहां पहले संसर्ग क्या वस्तु है, यह विचारना चाहिये ।

इस प्रबन्ध में संसर्ग का अर्थ, शक्ति, गुण, दोष और प्रकारादि जो ज्ञातव्य हैं, उन्हीं को आपके सन्मुख लिखने का उद्योग कियाजाता

मुझे विश्वास है कि इससे हिन्दु वैवाहिक विज्ञान की औरभी पुष्टि होगी। यह बात सब जानते हैं कि, एक वस्तु का सम्बन्ध नहीं होता, सम्बन्ध दो तीन चार पांच या इनसे अधिक वस्तुओं का मिलकर होता है। इसीको संसर्ग या संस्रव कहते हैं। यह संसर्ग अनेक प्रकारका होता है। जैसे शारीरिक, मानसिक और वाचनिक फिर यहभी स्थान विशेष से और विषय विशेष से अनेक प्रकारका होजाता है। जैसे साक्षात् सम्बन्ध, परम्परा सम्बन्ध, दूरत्वसम्बन्ध, सामीप्यसम्बन्ध, प्रतीकूलत्व सम्बन्ध अनुकूलत्व सम्बन्ध इत्यादि—

जिसप्रकार— अग्नि साक्षात् सम्बन्ध से संयुक्त होकर काष्ठ को भस्म करता है सूर्य्य किरणों के संयोग से कमल को खिलाता है, मन मन में खट्टी वस्तु का ध्यान करने से जिह्वापर सूक्ष्मरूप से खट्टी वस्तु आजाती है और मुखमें जल उत्पन्न हो आता है इत्यादि।

और यह भी समझलो कि जिन दो वस्तुओं का सम्बन्धहोता है, उन दोनोंवस्तुओं का परस्पर गुण दोनों वस्तुओं में आजाता है। जैसे गुलाब का फूल और जल, इन दोनों के संयोगसे गुलाब के फूल की गन्ध जल में और जल की शीतलता गुलाब के फूल में मिलजाती है। किन्तु कहीं इस सम्बन्ध—जनित संक्रमित गुण की उपलब्धि प्रत्यक्ष रूप से जानी जाती है और कहीं इतने सूक्ष्म रूप से रहतीहै कि, उसका अनुभवभी नहीं होता। तथापि यह निश्चय है कि परस्पर गुणका परिवर्तन होगा।

उन में प्रबल गुण, दुर्ब्बल गुण को निस्तेज करके जितना प्रकाशित होताहै, दुर्ब्बल गुण का कार्य्य उतना प्रकाशित नहीं होता।

शास्त्रकारों ने पापी और पाप संसर्ग को ध्यान में लाने काभी निषेध किया है। चाण्डाल की छायाभी स्पर्श न करे, पाखण्डी नास्तिक के सङ्ग आलाप रूप सम्बन्ध भी न करे धर्मध्वजी और विडाल तपस्वीको पानेके निमित्त जलभी न दे, जलदेने से पाप होताहै। यथा मनु ४। १९२।

हैतुकान् बकवृत्तींश्च वाङ्मात्रेणापि नार्च्चयेत्।
वार्य्यपिन प्रदद्यात्तु वैडाल वृत्ति के द्विजे।
नबक व्रतिके विप्रे नाऽवेद विदि धर्म्मवित्॥

कैसी भयानक बात है, कैसा लोम हर्षण व्यापार है! प्यासे धर्म्मध्वजी को जल भी नदे! मनु जी क्या ऐसेही नृशंसथे! यहां तो ऐसा

ही ज्ञात होता है । देखना चाहिये कि इस के भीतर कुछ गूढ़ रहस्यहै वा नहीं ।

विचारकर देखिये कि, आप किसी एक महात्माके समीप बैठे हैं उस समय आपके हृदयमें अज्ञात रूपसे विनय, आर्जव सत्यवादिता और दया आदि उत्तम गुण निश्चय उत्पन्न होंगे, हृदय में अङ्कित हुए उन्हीं गुणोंके चिन्ह बाहर शरीर परभी ज्ञात होने लगते हैं. जैसे हात जोड़ना, दंडवत् प्रणाम आदि करना यह बात प्रत्यक्ष सिद्ध है ।

जबहीं आप उस महात्मा के समीप से अपने घर को लौटते हैं तबहीं आप के हृदय में से विनय, दया शिष्टता आदि सद्गुण निकलने लगतेहैं । महात्माके साक्षात् से जो विनयादि की तरङ्ग उठी थी, मार्गमें आते आते क्रमानुसार वह तरङ्ग लय होने लगी । शेष में एक समय वह सम्पूर्ण ही लय होगई आप जैसे पहले थे वैसेही ठीक अबभी होगये ।

क्यों ऐसा हुआ । फिर इस की प्राप्ति आप नहीं कर सकते । इस से स्पष्ट जाना जाता है कि, सत् संसर्ग का अद्भुत माहात्म्य है । आगे चल कर और भी स्पष्ट रूप से बताने की चेष्टा की जाती है ।

देखिये संसार में जिस किसी वस्तु का अस्तित्व देखा जाता है, वह सम्पूर्ण सत्व रज और तमोगुण के मेल से उत्पन्न हुआ है । सत्वगुण का धर्म सुख,ज्ञान,वैराग्य और प्रकाश आदि है । रजोगुणका धर्म्म दुःख लोभ, कार्य में उद्योग, और अभिमान इत्यादि हैं. तमोगुणका धर्म-अज्ञान, आलस्य, निद्रा और जड़ता आदि है । फिर पूर्वोक्त सुख दुःख और अज्ञान आदिभी सात्विक, राजसिक और तामसिक भेद से तीन तीन प्रकार के किये जासक्ते हैं, किन्तु यहांपर यह प्रसंग नहीं है ।

इन सत्व रज और तम गुणका यहभी एक स्वभाव है कि, एक गुण दूसरे गुणको दबाकर स्वयं बड़ा होजाता है ।

" परस्पराभि भवाश्रय जनन-मिथुन वृत्तयश्चगुणाः "

(सांख्यकारिका १२)

जब मनुष्य का सत्वगुण रजोगुण और तमोगुणको दबा देता है, तब वही मनुष्य शान्त, सुखी और साधु रूपहोजाता है । तथा जब मनुष्य का रजोगुण प्रबल होकर सत्व और तमो गुणको दबा लेता है, तब वही मनुष्य भयानक प्रचण्ड मूर्ति धारण करलेता है, तब उसके शरीर में विनय, दया, हिताहितका विचार कुछ भी नहीं रहता और जब तमोगुण प्रबल होकर सत्व रजको दबा लेता है, तब मनुष्य, अज्ञान, आलस्य निद्राभिभूत होजाता है बरन पत्थर की

समान जड़ होजाता है। उस समय उसका अङ्ग काटने परभी उसको कुछ वेदना नहीं अनुभव होती।

एक गुण उत्तेजित होकर दूसरे गुणका क्यों पराभव करता है एक गुण क्यों बलवान होता है और दूसरा गुण किस कारण दुर्बल होता है! बस इसका कारण अनेक वस्तुओंका संसर्गही है।

जिसप्रकार कोई पथिक अत्यन्त धूपके संयोग से सत्वगुण हारकर तप्तहोने से दुःख अनुभव कर रहा है वैसेही उसने शीतल जलमें स्नान, शर्करा मिला हुआ शीतल जलपान और वृक्ष के नीचे बैठकर शीतल वायु सेवनकी, बस फिर उसी जल और वायुके संयोग संसर्ग से उसके शरीर और मनमें सत्वगुण उत्पन्न होगया, उस उत्पन्न हुए गुणने रजोगुण और तमोगुण को दबादिया अतएव पथिक सुखी हो गया।

ऐसेही मानलो कि किसी एक श्रेष्ठ पुरुष ने आनन्द और ध्येय वस्तु पर लक्ष्य स्थिर करने के आशय से थोड़ी सुरा पी, फिर थोड़ीसी पी, फिर पी ऐसेही पांचः छः बार पीने से मात्रा अतिक्रमहोनेपर रजोगुण ने उत्पन्न होकर सत्व गुणको ढकलिया, क्रमानुसार वह मनुष्य तमो गुणकी सहायता से जलमें स्थल और स्थल में जल, तथा आकाश में धरती विचरते हुए देखने लगा। भाईको साला और साले को बाबा कहने लगा, कभी हँसता है कभी रोता है। कभी वमन करता है और उसको अपने शरीर में लगाता है। तकिये को फाड़कर उसकी रुई घर में उड़ाता है। उस समय वह सुरा देवी के पान संसर्ग से अपने सत्व गुणको खो बैठा और विक्षिप्त होकर दुःख भोग रहा है।

और देखिये, यदि किसी के ऐसा व्रण होजाय कि, जिसके चीरने की आवश्यकताहो, तो उस रोगी को "क्लोरो फार्म" (मूर्च्छा कारी औषध विशेष) के द्वारा मूर्च्छित करके उसके अङ्गको काटडाला जाता है। क्लोरो फार्म के आघ्राण संसर्ग से उस समय रोगी का सत्व और रजोगुण प्रायःलुप्त होजाताहै। इसी कारण वह दुःख काभी अनुभव नहीं करताहै और घोर तमसा वृतहोजाताहै।

धूपसे तपे हुए, मद्यपीने वाले और व्रण रोगी की अवस्था जैसी स्पष्ट रूप से प्रतीत होती है, सत् संसर्ग या असत् संसर्ग का कार्य उतना स्पष्ट नहीं देखाजाता। किन्तु यह शनैः शनैः कालान्तर से प्रत्यक्ष सामने उपस्थित होताहै।

जिन में रजोगुण अधिक है, जो धूर्त्त, लम्पट, दुराचारी हैं, उनके समीप यदि साधू मनुष्य छुपहोकर भी बैठैगा, तोभी उन दुष्टोंके शरीर से निकली हुई ऊष्मा के सङ्ग धूर्त्तता, लम्पटता, हिंसा आदि दोष उस साधू के शरीर में एक एक करके प्रवेश करने लगें गे। कुछ दिनों के उपरान्त उसकी साधू वृत्ति सम्पूर्ण नष्ट होजायगी और उसके चित्त में दुष्टभाव उदय होनेलगें गे। क्योंकि इसमें यह ही हेतुहै कि, असत् पुरुष के सङ्ग एक स्थान में बैठने रूप संसर्ग श्रोतसे असत्वृत्ति निकल कर साधू के शरीर में मिलगई हैं। यह संसर्ग अधिक दिन तक होने पर वह साधु साधू नहीं रहैगा, असाधु होजायगा। इसी कारण शास्त्र कारों ने असत् संसर्ग का निषेध किया है।

इतनी दूर का विचार करकेही भगवान् मनुने नास्तिक के सङ्ग आलाप रूप संसर्ग और बिडाल तपस्वी के सङ्ग जल प्रदान रूप संसर्ग करना निषेध किया है।

महर्षि बृहस्पतिजीभी कहते हैं कि,—

एक शय्या शनं पंक्तिर्भाण्ड पक्वान्न मिश्रणम्।
याजनाध्यापनं योनिस्तथाच सह भोजनम्॥
नवधा सङ्करः प्रोक्तो न कर्त्तव्यो ऽधमैः सह॥

अर्थ—एक आसन पर बैठना, एक पंक्ति में बैठकर भोजन करना, भोजन बनाने के पात्रों को मिलाना और पके हुए अन्नको मिलाना, यह पांच लघु संसर्ग तथा यज्ञ करना विद्या पढ़ना योनि, और एक पात्रमें एक जगह बैठकर भोजन करना यह चार गुरुतर संसर्ग हैं। उक्त नौ प्रकार के संसर्ग पतित के संग न करें॥ महर्षि पराशरभी यही कहते हैं कि,—

आसनाच्छयनाद्यानात् भाषणात्सहभोजनात्।
संक्रामन्तिहि पापानि तैल बिन्दु रिवाम्भसि॥

अर्थ—जैसे तेलकी बूंद पानी में गिरतेही जल में चारों ओर फैल जाती है वैसेही पाप वृत्ति समीप बैठने से, सङ्ग यज्ञ करने से, चलने से, परस्पर संभाषण करने से और एकत्र भोजन रूप संसर्ग से दूसरे के शरीर में मिलजाती हैं। महात्मा देवल कहते हैं कि,

संलापस्पर्श निःश्वास सह शैय्या सनाशनात्।
याजनात् ध्यापनात् यौनात् पापं संक्रमते नृणाम् ॥

परस्पर आलाप, स्पर्श, निःश्वास एकत्र शयन, एकत्र उपवेशन एकत्र भोजन, याजन, अध्यापन और योनि संसर्ग से एक शरीर से दूसरे शरीर में पाप संक्रमित होता है।

महर्षि छागल कहते हैं कि,—

आलापादगात्रसंस्पर्शान्निश्वासात्सहभोजनात्।
सहशय्यासनाध्यायात् पापं संक्रमते नृणाम् ॥

अर्थ—आलाप, देहस्पर्श, निश्वास, एकत्र भोजन, एकत्र शयन और एकत्र अध्ययन संसर्ग से पाप वृत्ति दूसरे मनुष्यमें संक्रमित होतीहै।

इसी लिये हिन्दूलोग भङ्गी चमार आदि अंत्यज जातिको स्पर्श नहीं करते तथा दूसरे का श्वांस या निष्ठीवन देह पर लगजाने से दोष मानते हैं।

शरीर तत्व वित् भगवान् चरकाचार्य्यने भी दुष्ट का संसर्ग वर्जित करने का उपदेश दिया है। यथा,—

पाप वृत्तवचः सत्वाः सूचकाः कलह प्रियाः।
मर्मोपहासिनो लुब्धा पर वृद्धि द्विषः शठाः ॥
परापवादरतयः परनारी प्रवेशिनः।
निर्घृणास्त्यक्त धर्माणः परिवर्ज्या नराधमाः ॥

(सूत्रस्थान ७ अध्याय)

अर्थ जिसका मन और वाणी सदां पाप विषय में ही लगी रहती है, जो झूठ बोलने वाला है, जिसको सदां क्लेशही अच्छा लगता है, जो दूसरे के चित्त को अपने वाक्य रूपी बाणों से बेध कर हँसता है जो लोभी है जो दूसरेकी लक्ष्मी को नहीं सह सका, जो शठ है। जिसको दूसरों की निन्दा सुनने में या करने में आनन्द होताहै जो चञ्चल प्रकृति है, जो इन्द्रियों के वशमें है, जो दया रहित और पापात्मा है उस नराधम के संग कभी संसर्ग न करे॥

विसूचिका (हैजा) रोगी के श्वास के सङ्ग पाकाशय से विसूचिका का सूक्ष्म बीज बाहर आकर दूसरे शरीर में ऊष्मा (बिजली) वा श्वासके संग प्रविष्ट होकर दुर्बल सत्व पुरुष को विसूचिका उत्पन्न करता है. अतएव विसूचिका आदि कितने ही रोग संक्रामक होतेहैं। आलाप, स्पर्श, संग भोजन, एक शय्या पर शयन, एक आसन पर बैठना, रोगी के वस्त्र, माला, रोगीके लगाने से बचा हुआ चन्दन और तैल आदिलगाने से संक्रामक रोग दूसरे के शरीरमें प्राप्तहोते हैं।

महर्षि सुश्रुत कहते हैं कि, कुष्ठ, सन्निपात, ज्वर, शोष, नेत्र रोग और औपसर्गिक उत् पातादि यह सम्पूर्ण संक्रामक हैं ·(१)

किन्तु रोगादि स्थूल विषय अनुभव किये जातेहैं और संक्रामक दुष्ट वृत्तियां दुष्टभाव प्रत्यक्ष नहीं ज्ञातहोतेहैं। परन्तु गम्भीर विचारकरने से जाने जाते हैं।

---

(१)प्रसङ्गादगात्र संस्पर्शान्निश्वासात्सहभोजनात्
सहशैय्यासनाच्चापि वस्त्र माल्यानु लेपनात् ॥
कुष्ठं ज्वरश्च शोपश्च नेत्राभिष्यन्द एवच ।
औपसर्गिक रोगाश्च संक्रामन्ति नरान्नरम् ॥
(निदानस्थान ५ अध्याय)

ऊपर कहेहुए प्रबन्ध द्वारा जैसे यह बात जानी जाती है कि, दुष्ट संसर्ग से साधु मनुष्य भी असाधु होजाता है, वैसेही प्रबल सत्वगुण सम्पन्न साधु पुरुषके संसर्ग से भी असाधू पुरुष साधू होता है, इस बातको शरीर तत्ववित् महात्मा हारीत ऋषि कहते हैं कि ?

हन्याद शुद्धः शुद्धन्तु शुद्धोऽशुद्धन्तु शोधयेत् ।
अशुद्धश्च तमोभूतः शुद्ध वासेन शुद्धयति ॥
(प्रायश्चित्त विवेक)

अर्थ—पापी पुण्यात्मा को अभिभूत करसक्ता है अर्थात् पापीकी पाप वृत्ति पुण्यात्मा में संक्रमित होनेपर फिर वह पुण्यात्मा, पुण्यात्मा नहीं रहता, पापी होजाता है। क्योंकि "संसर्गजा दोष गुणा भवन्ति" किन्तु जो अत्यन्त पुण्यात्मा है अर्थात् जिसका सत्व गुण इतना प्रबल है कि अनेक पापियों के हृदसे निकलीहुई पाप राशि भी उसकी सत्वा

ग्नि में तृण की भांति भस्म होजाती है, वह पुण्यात्मा अनेक पापियोंका उद्धार कर सक्ता है, अर्थात् उसके शरीरमें से सत्वृत्ति निकलकर पापी के शरीर में प्रविष्ट होजाती हैं और पापी की पापवृत्ति उस से दबकर समूल नष्टहो जाती है। उससमय मलिनात्मा पापी भी शुद्ध संसर्ग से शुद्ध होजाता है, किन्तु एक दिन या दो दिनके संसर्गसे ऐसा नहीं होता दीर्घ काल पर्यन्त महात्मा का संसर्ग करने से ऐसा होता है। इसी कारण बौधायनादि ऋषियोंने कहा है कि,

" न संवत् सरेण पतति पतितेन सहाचरन् "

अर्थ—पतित मनुष्य के संग एक वर्ष पर्यन्त एकत्र भोजनादि संसर्ग करने से शुद्ध मनुष्य भी पतित होजाता है। इससे गुरु लघु संसर्ग का विशेष भेद है। तन्त्रशास्त्र में कहा है कि,

राज्ञि राष्ट्रकृतं पापं राजपापं पुरोहिते ।

राज्ञिन्या मान्यजो दोषः पत्नीपापञ्चभर्त्तरि ।
तथा शिष्यार्जितं पापं गुरुःप्राप्नोति निश्चितम् ॥

अर्थ—मन्त्री का किया हुआ पाप राजामें, स्त्रीका पाप पतिमें और शिष्यका किया हुआ पाप गुरुमें संक्रमित होता है।

और अधिक क्या कहैं ! यदि भोजनके समय एक पंक्ति में एक पापी ब्राह्मण बैठा होगा तो उसकी मानासिक और दैहिक पाप वृत्ति दूसरोंके सन्मुख धरे हुए अन्नमें मिलजायगी और जो उस अन्न को भोजन करेगा, उसके शरीर में वह पापवृत्ति प्रवेश करेगी सम्पूर्ण पंक्ति को दूपित करता है इसी लिये उस ब्राह्मण को " पंक्तदूपिक कहते हैं। पंक्ति दूषक ब्राह्मण कितने प्रकार के हैं, सो मनुसंहिता के ३ अध्याय के १५२—१६१ श्लोक पर्यन्त तिराण मैं प्रकार के कहे हैं।

इनमें चिकित्सा व्यवसायी, देवल और मांस विक्रेता आदि ब्राह्मण अति निकृष्ट हैं।

शास्त्र कारोंका यह मत है कि, इनको पंक्ति मेंभी न बैठावैं।

किन्तु इस कठिन नियम का पालन करना गृहस्थोंको कठिन है। इसी लिये महात्मा वेदव्यास ने पाप संक्रमण भयसे रक्षाप्राप्त करने के निमित्त उपाय कहा है कि;—

अप्येक पंक्तौ नाश्नीयात् संवृत्तः स्वजनै रपि ।
कोहिजानाति कस्यास्ते प्रच्छन्नं पातकं महत् ॥
भस्मस्तम्भजलद्वार मार्गैः पंक्तिश्च भेदयेत् ।
(आन्हिक आचारतत्व)

अर्थ अन्य किसीकी तो बात क्या कहें; अपने बन्धु बान्धवों के सङ्गभी शरीर से शरीर मिलाकर एक पंक्ति में बैठकर भोजन न करै, न जाने किसी के शरीर में गुप्त रूपसे कितने पाप छिपे हुए हैं, किन्तु इस बातको कठिन समझकर, उस पाप वृत्ति संक्रमणको दूर करने के निमित्त भस्म, तृण वा जल द्वारा वेष्ठन करके पंक्ति भेद पूर्वक भोजन करै ।

इससे स्पष्ट जानाजाताहै कि, सबके शरीरमें एकतेजपदार्थहै, जोसदा इधर उधर फैलता है, उसी को ऊष्मा या बिजली कहतेहैं । यह तेज तेजसेही अधिक खैंचाजाताहै अर्थात बिजली सेही बिजली खिंचती है जो फल मूल नहीं पके होते उनकच्चे फलोंमें बिजली प्रवेश नहीं करती। अतएव अग्नि जल और लवण आदि के द्वारा पकाये हुए अन्न आदि के तेज में पापी के देहका तेज शीघ्र प्रवेश करजाताहै । किन्तु बीच में यदि भस्म, तृण या जलने मार्ग को रोक रक्खा हो, तो वह तेज भस्म, तृण या जल में लगकर पीछे को लौट जायगा अन्न या भोजन करने वाले के शरीर में नहीं प्रविष्ट होगा ।

तेज का संक्रमण तेज मेंही अधिक होता है, इसका और एकदृष्टान्त दिखाते हैं ।

यथा—"चकोरस्य विरज्येते नयने विष दर्शनात् ,, ।

अर्थ विष देखतेही अर्थात् विष के संग नेत्रों का संयोग संसर्ग होतेही चकोर पक्षी के नेत्र विरक्त होजाते हैं और लाल हो उठते हैं क्योंकि तीक्ष्ण वीर्य विषका तेज चकोर पक्षी के तैजस इन्द्रिय नेत्रको ही शीघ्र आक्रमण करता है, इसी लिये महात्मा ऋषियों ने चकोर पक्षी का दूसरा नाम "विष दर्शन मृत्यु" रक्खा है । विष परीक्षा के लियेही चरक आदि वैद्य शास्त्र कारोंने राजाके भोजन भवन में चकोर पक्षीको अन्नके समीप रखनेका उपदेश दियाहै । क्योंकि राजाके भोजनमें विष होगा, तो चकोरपक्षीके द्वारा प्रमाणित होजायगा और इसीकारण चकोर पक्षी दिवाभागमें विषाक्त सूर्य की किरणों के भयसे छिपा हुआ रहकर भी कथञ्चित प्रविष्ट विष ज्वाला की निवृत्ति के लिये शीतल चन्द्र किरण पानकर के स्वस्थ होता है । महर्षि याज्ञवल्क्य कहते हैं कि—

"श्वस्पृष्टं पतिते क्षितं ,, "उदक्यास्पृष्टम् ,, ।

जिस अन्नको कुत्ते ने, रजस्वला स्त्री ने या पाप वृत्ति स्त्री ने स्पर्श करलिया हो, वा पतित मनुष्य ने देख लियाहो, उस अन्नको भोजन न करै ।

इसका तात्पर्य्य यही है कि, तमोगुण प्रधान मल मूत्र भोजी कुत्तेकी विष युक्त पापवृत्ति तथा रजस्वला स्त्री के स्पर्श और संसर्ग से और तमोगुणी पतित मनुष्य के दर्शन संसर्ग से अन्नमें कुत्ते और पतितकी तामसवृत्ति आकर मिलजाती है। उस अन्न के भोजन से सत्व प्रकृति आर्य्यजाति मनुष्यकी शारीरिक वा मानसिक पुष्टि कभी नहीं होसक्ती।

किसी किसी पशु और मनुष्यके देखने से ही भोजन की वस्तु विषमय होजाती है।

यथा--"हीन दीन क्षुधार्त्तानां पापषंडैन रोगिणाम्।
कुक्कुटा दिशुनांदृष्टि भोंजने नैव शोभना॥

अर्थ—नीचजाति, दरिद्र, क्षुधातुर, पापी, नपुंसक हरिण, रोगी, कुक्कुट, और कुत्ता इनकी दृष्टि भोजन पर पडनी उत्तम नहीं अर्थात् इनके दृष्टि संसर्ग से नेत्रों के तेजके संग विष प्रविष्ट होकर अन्नकों दूषित करदेता है; उस अन्न का आहार अपकार करता है।

किन्तु उक्त नियम की रक्षा करना बहुधा कठिन है। इस कारण दृष्टि दोष निवृत्ति के निमित्त ऋषियों ने दो मन्त्रों का पाठ करना कहा है।

यथा--" अन्नं ब्रह्मरसोविष्णुर्भोक्ता देवो महेश्वरः।
इति सश्चिन्त्यभुञ्जानो दृष्टिदोषं न वाधते॥
अञ्जना गर्भ सम्भूतं कुमारं ब्रह्मचारिणम्।
दृष्टि दोष विनाशाय हनुमन्तं स्मराम्यहम्॥

अर्थ—यह अन्न साक्षात् ब्रह्मस्वरूप है, और इस अन्नमें जो रस है, वह स्वयं विष्णुजी हैं, और जो इस अन्नको भोजन करते हैं, वे हलाहल भोक्ता साक्षात् महादेवजी हैं, इस प्रकार ध्यान करके भोजन करने से, पूर्व्वोक्त दृष्टि दोष से मनुष्य आक्रान्त नहीं होता॥

अञ्जनी नन्दन बाल ब्रह्मचारी हनुमानजी को पूर्व्वोक्त दृष्टि दोष निवृत्ति के निमित्त मैं स्मरण करता हूं॥

और किसी किसी प्राणी के दृष्टि संसर्ग से अन्न अमृत मयभी होजाता है इस लिये भोजन के समय उनको समीप रखना उचित है।

यथा—पितृमातृ सुहृद्वैद्या पापकृद्धंसबर्हिणाम् ।
सारसस्य चकोरस्य भोजने दृष्टिरुत्तमा ॥

अर्थ—स्नेहाधार मातापिता, मित्र, वैद्य, धर्म्मात्मा, हंस, मयूर, सारस और चकोर, इनकी दृष्टि भोजन के समय शुभ है, इनके देखने से भोजन अमृत मय होजाता है, वह अन्न उदर में शीघ्र परिपक्व होकर शरीर को पुष्ट करता है । वस जो निरोग शरीर, दीर्घ जीवन और सुख शान्ति की इच्छा रखते हैं, उन जिस तिसका पक्वान भोजन करना उचित नहीं । क्योंकि अपाति अपवित्र पाचक या वबर्ची के शरीर को तामसी वृत्ति उसके शरीर की विजली के संग अन्न में मिलैगी—उस अन्नको खाने से सात्विक प्रकृति हिन्दू के शरीर में सञ्चित हुआ सत्व गुण दूषित होजायगा और पाचक की तामसी, वृत्ति वलवान होजायगी । ऐसा होनेसे सुख शान्तिकी आशा तो दूर रही वरन नाना प्रकारके संक्रामक रोग भोक्ता के शरीर में उत्पन्न होंगे ।

इसी लिये शास्त्रकारों ने ब्रह्मचर्य्य विधान से तथा सतोगुण उदय के निमित्त दूसरेका अन्न अर्थात् भिन्न गोत्री का पक्वान्न भोजन निषेध किया है । अपने स्त्री पुत्रादि यदि वे मन से भोजन बनादेंगे, तोभी विशेष हितकारी होगा । क्योंकि उनका वह सत्वगुण का परिणाम स्वाभाविक श्रद्धा और स्नेह विजली के सङ्ग अन्न में मिलकर अन्नको पवित्र करेगा । किन्तु नौकरी पानेवाले पाचक या वबर्ची में वह श्रद्धा वह स्नेह कहां से आवेगा ? उनका स्नान करना तो दूर रहा, विना शौच गयेही भोजन बनाने लगते हैं और उसी स्थान में अपानवायु छोड़ते हैं, तुम उस भोजन को खावो या मत खावो मरो या बचो इससे उनको कुछ प्रयोजन नहीं ।

पहले पंक्ति दूषक ब्राह्मण की शक्ति दिखा चुके हैं, अब पंक्ति पावन ब्राह्मण के संसर्ग की शक्ति कहते हैं ।

पद्मपुराणमें लिखा है कि,—

इमेहि मनुज श्रेष्ठ विज्ञेयाः पंक्ति पावनाः ।
विद्यावेद व्रतस्नाता ब्राह्मणासर्वगत्वहि ॥

स्वर्ग खण्ड ७५,—१

अर्थ—हे राजन्! जो ब्राह्मण विद्या, वेदाध्ययन, वृतादि नियम और यथा विधि स्नानादि क्रिया में तत्पर रहते हैं, वेही पंक्ति पावन है। वे पंक्ति को पवित्र करनेवाले ब्राह्मण अनेक प्रकार के हैं।

भोजन के समय एक पंक्ति में यदि एकभी पंक्ति पावन ब्राह्मण बैठा होगा, तो वह सम्पूर्ण पंक्ति शुद्धहोजायगी। अर्थात् उस सात्विक पुरुष के शरीर से प्रबल साधु वृत्ति निकलकर प्रथम अन्नमें फिर अन्न के संग भोजन करने वालों के शरीर में प्रविष्टहोगी और उस अन्नको भक्षण करके खानेवाले अत्यन्त प्रसन्न होंगे।

इसी लिये शास्त्र कारोंने सतोगुणी साधु को पंक्ति पावन कहा है।

संसर्ग के अनिर्वचनीय माहात्म्य सम्बन्ध में और अधिक क्या कहा जाय, पाठक गण विचार पूर्व्वक देख सके हैं कि, जो मनुष्य उत्तम पुरुषों का संसर्ग करता है, उसका आचार व्यवहार भी वैसाही होजाता है।

इसवातको मनुजीनेभी कहा है,—

यादृशेनेव भर्त्ता स्त्री संयुज्येत यथा विधि।
तादृग् गुणा सा भवति समुद्रे णेव निम्नगा ॥

अर्थ—स्त्री और स्वामी इन दोनों में यदि स्वाभाविक स्नेहादि संसर्ग होगा, तो जैसे गुणवाला स्वामी होगा ठीक वैसेही गुण वाली स्त्री भी होजायगी। जैसे समुद्रके संसर्ग से मीठे जलवाली नदी भी खारी होजाती है। इसका तात्पर्य्य यही है कि जिसमें जो गुण अधिक होता है, वही गुण संसर्ग करने वाले में प्रविष्ट होजाता है।

स्त्री यदि सती सुशीला होगी, तो उसके संसर्ग से दुष्ट प्रकृति स्वामी भी क्रमानुसार सुशील होजायगा और स्त्री यदि दुष्टाहोगी, तो उसके संसर्ग से स्वामी दुष्ट शिरोमणि होजायगा।

महात्माओंने हमारे कल्याणके निमित्त जो नियम निर्धारित कियाहै, उनका पालन करनाही हमारे पक्षमें कल्याणकारीहै। अतएव इसप्रबन्ध से भले भांति जाना जाता है कि, बालविवाह शास्त्र सिद्ध युक्ति सिद्ध और समयानुकूलही है।

इति प्रथमभाग समाप्त ॥
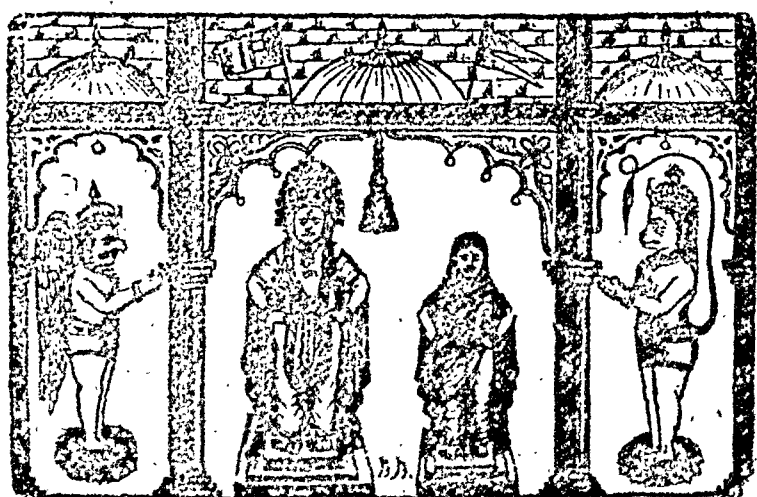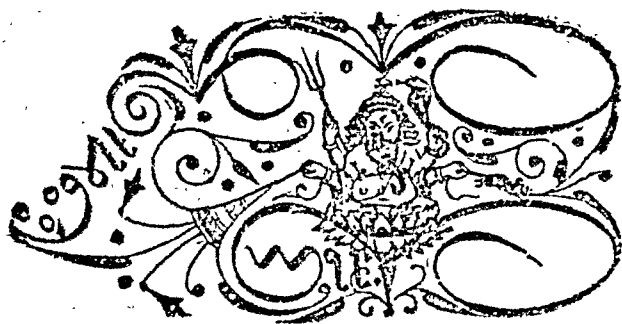
॥ श्रीगणेशायनमः ॥

कोकशास्त्र

दूसरा भाग ॥

प्राचीन भारतका लोक वृत्त और जातीय इतिहास॥

जैपुर निवासी महामहोपाध्याय पं. दुर्गा प्रसाद द्वारा प्रकाशित वात्स्यायनीय-काम सूत्र नामक दुष्प्राप्य प्राचीन ग्रन्थका एक खंड ग्रन्थ प्राप्त होनेपर जानागया कि उक्त ग्रन्थ संक्षिप्त सौत्रक गद्यमें विरचित हुआ है उसका भाव और उसकी भाषा इतनी गम्भीर है प्रतिपाद्य विषय इतना विचित्र शिक्षाप्रद और मनोहर है और उसमें भारत के अनेक देशीय मनुष्यों के आचार व्यवहार, रीति, नीति, इत्यादि की इतनी बातें हैं कि उनसबको पढ़कर विशेष इच्छा हुई कि उक्त कामसूत्र का भाषान्तर कियाजाय, परन्तु समयाभाव, कार्य बाहुल्य इत्यादि कारणों से अबतक इच्छा के पूर्ण करनेका अवसर नहीं प्राप्त हुआ, तथापि अल्पकाल में ही पाठकगण उक्त पुस्तक के भाषान्तर को पाठ करके अपने कौतूहल को चरितार्थ करेंगे। इस समय यहां पर कामसूत्र ग्रन्थ का कुछ थोड़ासा सार

पाठकगण को उपहारमें दिया जाता है, कामसूत्र ग्रन्थ सटीक है, इन्द्रपाल उपाधि धारी यशोधर नामक एक महात्मा उसके टीका कार हैं, टीकाकार का परिचय केवल इतनाही पाया जाता है कि वह टीका बनाने के समय किसी विदग्धाङ्गना के विरहसे कातर थे और सम्भव है कि उस विरह दुःखको निवारण करने के लिये ही उन्हों ने वात्स्यायन रचित सूत्र और भाष्य को एकत्र करके उसके ऊपर जयमंगल नाम्नी एक टीका बनाईहो, टीके की भाषा प्रांजल होनेके कारण भावकी गम्भीरता में मूल का गुण रखती है, जिसके पढ़नेसे भली भांति जाना जाता है कि टीका कार व्याकरण, धर्म शास्त्र, इतिहास वैद्यक इत्यादि सभी शास्त्रों में विशेष पारदर्शी थे। वह वृथा वाग जाल के किञ्चित भी पक्षपाती नहीं थे जैसे कि बहुत से टीका कारहोतेहैं, उन्होंने किसी स्थान में भी अपना गौरव बढ़ा ने के निमित्त पंडिताई नहीं छौंकी है,

अनन्तर मूलकारकाभी कुछ परिचय देना आवश्यकहै, ग्रन्थ में कहीं भी उनकानाम नहीं तथापि टीकाकार महाशय कहतेहैं कि वात्स्यायन मूलकारके गोत्रका नाम और मल्लनाग उनका यथार्थ नामहै।वात्स्या यन इति सौ गोत्र निमित्ता समाख्या मल्लनाग इति सांस्कारिकी पृष्ठ१७ अतएव निश्चय होता है कि मल्लनागनेही इन सूत्रोंको बनाया इधर अभिधान चिन्तामणि से जाना जाता है कि वात्स्यायन, मल्लनाग कुटिल, चणकात्मज द्रामिल पक्षिलस्वामी विष्णुगुप्त और अंगुल यह कतपय पर्याय शब्द हैं यथा " वात्स्याने मल्लनागः कुटिलश्च णकात्मजः द्रामिलः पक्षिलस्वामी, विष्णुगुप्तोऽङ्गुलश्चसः " इनमें से कुटिल, चणकात्मज वा चाणक्य और विष्णुगुप्त यह प्रसिद्ध राज नीतिज्ञ चाणक्य के नाम हैं इस में कोई सन्देह नहीं है। और ऐसा सिद्धान्त करनाभी कुछ अनुचित न होगा कि इसके समर्थक होनेके कारण द्रामिल, पक्षिलस्वामी, मल्लनाग और वात्स्यायन यह कई एक नामभी चाणक्यकेही हैं अतएव ग्रन्थकार वात्स्यायन यदि मल्ल

नागहींतो इस ग्रन्थ को सन ईसवी से चारसौ वर्ष पहिले का रचि- तहुआ समझना कुछ अनुचित नहीं है इसके संबन्ध में यह कहा जासकता है कि पक्षिल स्वामि विरचित न्यायसूत्र भाष्यकी भाषा के साथ काम सूत्रकी भाषाका मेल बहुत मिलता है अतएव इनदोनों ग्रन्थों को ही एक ग्रन्थकारका बनाया हुआ कहने में कोई बाधा नहीं जान पड़ती बहुत से मनुष्य ऐसे भी हैं जो वात्स्यायन और चाणक्य के अभेद वाद पर विश्वास नहीं करते ॥ वे कहते हैं कि ग्रन्थकार के नाम से चाणक्यकी विख्याति नहीं और केवल अभि धान चिन्तामणि के आश्रयसेही मल्लनाग पक्षिलस्वामी इत्यादि को चाणक्य समझ लेनाभी समीचीन नहीं दिखाई देता इसमें वक्तव्य यह है कि चाणक्यकी नाई प्रतिभाशाली पुरुषका ग्रन्थ रचना न करना विश्वास के योग्य नहीं और उसके ग्रन्थकार रूपसे विख्यात् न होने का कारण यह है कि सर्व साधारण उसको राज नैतिक जानते और मानते थे महामति ग्लाडस्टोन और बिस्मार्क यह दोनों ही अनेक ग्रन्थों के रचेताहोने पर भी सर्व साधारण में राजनैतिक नामसे विख्यात हुए और यह बात भी यथार्थ नहीं है कि चाणक्य ने कोई ग्रन्थ नहीं बनाया उस के श्लोक संग्रह के अतिरिक्त एक गद्य ग्रन्थका पताभी लगता है। मल्लिनाथ ने कुमारसंभव के छटे सर्गके सैंतीस श्लोकके " स्वर्गाभिष्यन्दवमनं कृत्वेवोपनिवेशिता " इस चरणकी व्याख्या में महात्मा चाणक्यका कहाहुआ निम्नलि- खित गद्यमयवाक्य उद्धृत किया है यथा,—उभयत्रापि कौटल्यः भूत पूर्व अभूत पूर्व वा जनपदं परदेशापवाहेन स्वदेशाभिष्यन्द वमनेन वा " निवेशयेत् " अर्थात् परदेशसे लोग बुलाकर वस्वदेशके अतिरिक्त लोग। अन्यत्र भेजकर भूतपूर्व वा अभूतपूर्व जनपद निवेश कियाजाय। मल्लि नाथके समय में यह ग्रंथ विद्यमान था, परन्तु इस समय लुप्तहोगया होगा। अतएव स्पष्टही समझ में आता है कि कुमार संभव का यह चरण चाणक्यकी उक्तिका अनुवाद मात्र है।

दूसरीबात यह है कि अभिधान चिन्तामणिकी उक्ति इतिहास मूलकहै या प्रवादमूलक ? इतिहासमूलकहो तबतो कुछ बातही नहीं और प्रवाद मूलकहो तबभी ध्यानदेनेंके योग्यही है । प्रवाद की भींत भी बहुधा ऐतिहासिक नीम के ऊपरही चिनी हुई होतीहै । अतएव जबतक कोई अतिप्रबल शुद्ध युक्ति नहीं मिलती तबतक मल्लनागके साथ चाणक्य का अभेदवाद स्वीकार करनेमें कोई बाधा नहीं जानपड़ती । यदि यह कहाजाय कि मल्लनाग और चाणक्य को एकही मान लिया, परन्तु वात्स्यायन और मल्लनाग एकही व्यक्तिके नामहैं तो इसबातमें प्रमाण क्याहै टीकाकार की उक्तिही इसमें प्रमाण है । ऐसे स्थल में जबतक इस युक्ति की असारता न प्रमाणित होजायगी तबतक उसको अभ्रान्त माननें और समझने में दोषही क्या है !

'वात्स्यायनीय कामसूत्र' इस नाम से व टीकाकार के कहे हुए वात्स्यायन और मल्लनाग के अभेदवाद से यह सिद्धान्त होता है कि वात्स्यायन में जिनका दूसरा नाम मल्लनाग था; इस ग्रंथ को बनाया । परन्तु ग्रंथका विचार करने से देखाजाता है कि उस के अनेक स्थलों में "वात्स्यायन नें यह कहा" "यह वात्स्यायन का मत है" इस प्रकार प्रथम पुरुष में (Third Person में) उक्ति है। ऐसे लिखनें से जाना जाता है कि भृगुप्रोक्त होनेंपर भी मनुक्त धर्म की सारसंग्रह कही जाकर जैसे मनुसंहिता मानव धर्मशास्त्र के नाम से प्रसिद्ध हुई, वैसेही वात्स्यायन का मत संग्रह होनें के कारण आ-लोचनीय ग्रंथ वात्स्यायन नाम से विख्यात हुआ होगा । अतएव यहां पर स्वयंही ऐसा सिद्धान्त निकल आता है कि संग्रह कार चाणक्य नहीं किन्तु कोई दूसरा था जो चाणक्य से पीछे हुआ । इसके अतिरिक्त ग्रंथमें रागान्ध होकर व्यवाय में प्रवृत्त होनें पर बहुधा अकाल मृत्युहोती है तथा समय २ पर बहुतसी दुर्घटना भी होजायाकरतीहैं इन दोएक बातोंको समझानेंके लिये कतिपय ऐति-हासिक घटना लिखी हैं । उन घटनाओं के नायकों के समय का

निर्णय करने की चेष्टा करने पर जाना जाता है कि संग्रह कार कुछ पीछे ही हुआ है, वह घटना इस प्रकार हैं;—

१ चोलराज नें अधिक क्रोध आजानें से "कीला" से गणिका चित्रसेना का प्राण संहार किया था।

[२] कुपाणि (कुनखी) नरदेवनें दुष्प्रयुक्त विद्धा, से नटी को काना किया था।

[३] शतकर्ण के पुत्र कुन्तल देशीय शातवाहन नें ' कर्त्तरी , से महादेवी मलयवती का प्राण संहार किया था।

[४] पराये घरमें गयाहुआ कोईराज आभीर अपने भ्राताके नियुक्त किये हुए किसी धोबी के द्वारा मार डालागया।

[५] काशीराज जयसेन अपने अश्वाध्यक्ष के हाथसे मारागया। उपरोक्त वाक्यों में लिखित ' कीला' ' कर्त्तरी , और ' विद्धा , यह कामशास्त्र में कहे हुए हस्तबन्ध विशेष हैं। दक्षिण देशमें इनबन्धों का व्यवहार प्रचलित था।*

उपरोक्त घटनाओंके नायकों में केवल शातकर्णि और शात वाहन हमारे परिचित हैं। यह प्रसिद्ध शालिवाहन हुए जो सन् ईसवी की पहली शताब्दी में विद्यमान थे। बाणकृत हर्ष चरित ग्रंथमें इनके निर्माण कियेहुए " गाथासप्तशती ,, ग्रंथका उल्लेख पाया जाता है और इस ग्रंथ के किसी २ आदर्श में मलयवती प्राण प्रिय मलय वत्सुप देश पंडित मूल कविवत्सल—श्री सातवाहन नरेन्द्र निर्मित यह उक्ति देखी जाती है ॥ ० ॥ अतएव इसमें कोई संदेह नहीं कि यही कामसूत्रकी आलोच्यमान घटनाका नायक हुआ था। चोल राजका नाम कहीं भी नहीं पायाजाता। नरदेव पांड्य राजका सेना पतिथा, और आभीर गुर्जर में कोट्ट नामक जनपदका स्वामी हुआ

* " कीला उरसि, कर्त्तरी शिरसि विद्धा कपोलयोः संदंशिका स्तनयोः पार्श्वयोश्चेति पूर्वैः सह अष्टविधं प्रहणनमिति दाक्षिणात्यानाम्। तद्युवतीनामुरसि कीलानि च तत्कृतानि दृश्यन्ते। देशसात्म्यात् (सू०) अत्र मुष्टिरिव तर्जनी मध्यमयोरंगुष्ठेन [illegible] [illegible] कीला (टी०) पृ० १५२। १५३ ॥

कहतेहैं कि यह अर्थी वसुमित्रकी भार्याको कलंकित करने के लिये उसके घरमें घुसा और वहाँ पर अपने भाई के नियुक्त किये हुये धोबी के हाथसे मारागया। यदि गोत्रका नाम आभीरहो तो पूर्वोक्त घटना सनईश्वी की तीसरी शताब्दी से लेकर छठी शताब्दीतक के किसी समय में हुई होगी। क्योंकि इतिहास वेत्ताओं के मतसे अन्धभूतलोगों के पीछे ही आभीर लोगोंनें राजत्वकिया और उनका राजत्व काल सन् ईसवीकी तीसरी शताब्दी से लेकर छठी शताब्दी तक फैलाहुआ था। काशीराज का नामभी नहीं पायाजाता अतएव पहली कही हुई घटनाओं से ऐसा सिद्धान्त किया जासकता है कि संग्रह कार सन् ईसवी की पहली से लेकर छठी शताब्दी तक के किसी समय में हुआ होगा तथा उसही समय में वात्स्यायन के बनाए हुए सूत्र संग्रहीत और परिवर्द्धितहोकर वर्त्तमान ग्रंथके आकार में बनगये।

इस में भी कोई सन्देह नहीं कि यह संग्रह भवभूति से पहलेही हुआहै। कारण कि भवभूति के मालती माधव नाटकका " कुसुम सम धर्माणोहि योषितः सुकुमारोपक्रमाः तास्वनधिगत विश्वासैः प्रसभमुपक्रम्य माणाः सद्यः सम्प्रयोगे विद्वेषणभवन्ति ॥ ,, (सप्तम अंक) यह वाक्य वात्स्यायन के कन्यासंप्रयुक्तकनामक अधिकरण के दूसरे अध्याय से अविकल उद्धृतहुआ है।

यशोधर कृत टीकेमें आचार्य रवि गुप्त प्रणीत चन्द्रप्रभा विजय, दण्डि-कृत काव्यादर्श और भारवि-कृत किरातार्जुनीय का नाम लिखाहै। रविगुप्तका चन्द्रप्रभा विजयतो हमने देखा नहीं और यह भी नहीं जानते कि रविगुप्त किस समय में हुये थे। आचार्य दण्डी के आविर्भाव काल सम्बन्ध में निश्चय कर के कोई बात नहीं कही जासकती। उसके निर्माण किये हुये काव्यादर्श में प्रवरसेन कृत सेतुकाव्य और गुणाढ्य कृत वृहत्कथाका उल्लेख देखाजाता है तथा मृच्छकटिक से " लिम्पतीव तमोऽङ्गानि ,, इत्यादि श्लोकभी

उद्धृत देखेजाते हैं । ऐसा जानपड़ता है कि वह छठीसे लगाकर सप्तम शताब्दी के बीचमें किसी समय उत्पन्न हुआहोगा। महाकवि भारवी छठी शताब्दी से पहले विद्यमानथा । शकाब्द ५५६ कुलके शीके राजत्व काल के समय खुदेहुये ताम्रशासन के नीचे लिखे हुये श्लोक से यह प्रमाणित होता है यथा;—"येना यांगि न वेश्म स्थिर मर्थविधौ विविकिना जिन वेश्म । सविजयतां रविकीर्त्तिः कविता श्रित कालिदासभारविकीर्त्तिः ,, अतएव यह निश्चयहोता है कि टीकाकार यशोधर अपने परभावी किसी समय में वर्त्तमान था । तथा यह सिद्धान्तहुआ कि इस कामसूत्र ग्रंथमें हिन्दुसमाजका जो चित्र अंकित है वह सन् ईसवीसे ४००वर्ष पहले और सन ईसवी की छठी शताब्दी तकका चित्रहै। अतएव बहुत प्राचीन न होनेपर भी नितान्त नवीन भी इस चित्र को नहीं कहाजासकता विचार पूर्वक इस ग्रंथका पाठकरने से प्राचीन हिन्दुओं की रीति, नीति, आचार, व्यवहार और आहार विहारादि के सम्बन्धमें बहुतसी नई बातें दिखाई देती हैं, दूसरे किसी ग्रंथमें साथ २ इतनी बातों का संग्रह नहीं है ।

आलोच्यमान शास्त्रका प्रतिपाद्य विषय काम है। गृहस्थीमें ही यह संभव होसकता है अतएव गृहस्थ—जीवन के साथ प्रतिपाद्य विषय का सम्बन्ध घनिष्ट है । यही कारण है जो वात्स्यायनजी ने प्रथम ही गृहस्थ—जीवन का उल्लेख करके उसके उपलक्ष में नगरवासियोंकी दैनिक और नित्य नैमित्तिक क्रियाकलाप का वर्णन किया है।

नगर निवासियोंके लक्षण ॥

गृहस्थ लोगों को दो भागमें विभक्त किया है यथा नागरक और अनागरक । उस समय में केवल नगरवासी होनेसेही नागरक पद नहीं मिलजाता, परन्तु काव्यकलाकुशल, धनसम्पत्ति शाली और अभिजात्य संपन्न मनुष्यगणही इस नाम से पुकारे जाते थे विशेष

करके पाटलिपुत्र अर्थात् पटने के निवासी इन लक्षणों से सम्पन्न थे इसही कारण से नागरक शब्द उनका बोध करानेंवाला हुआ उचित रीति से तो नागरलोगही जीवन और यौवन का उपभोग करते थे यही कारण है जो सबसे पहले उनका वर्णन कियागया। नागरक वृत्त अवलम्बन करनेंवाले के लक्षणों को सूत्रकार नें इस प्रकार बताया है,—विद्वान पुरुष गार्हस्थ प्राप्त कर के अर्थात् दार परिग्रह करके प्रतिग्रह (ब्राह्मणों के पक्ष में) जय (क्षत्रियों के पक्ष में), क्रय (वाणिज्यादि वैश्य के पक्षमें) और निर्व्वेश अर्थात् नौकरी (शूद्रके पक्षमें) से प्राप्त हुए धनसे अथवा दादा परदादा के वित्तसे नागरक का आचार स्वीकार करे। नागरक लोगों के आचार में व्ययहोता है, अतएव जिनके पास धन है, सूत्रकार के मतसे वही नागरक वृत्त पालन करनें के अधिकारी समझे गये हैं।

नागरक का वासस्थान नगरादि ॥

नागरक को उचित है कि नगर, पत्तन, खर्वट, महत् इत्यादि सज्जनाश्राय स्थान में अथवा जीविका के लिये ग्रामादि में वासकरे पृष्ठ (४४) नगर, पत्तन इत्यादि शब्द एकार्थ बोधक नहीं हैं। टीकाकार के मत से अष्ट शतग्रामी के मध्य जिस स्थान में इनग्रामों की मीमांसा होतीथी अर्थात् मुकद्दमे इत्यादि फैसलहोते थे उसको नगर के नामसे पुकारते थे * जिस स्थान में राजधानी होती थी उसको पट्टन कहते थे। द्विशत् ग्रामीके प्रधान स्थान का नाम खर्वट है। चतुःशत ग्रामी के प्रधान स्थानको महत् याद्रोण मुख कहते थे।

नागरक का वासभवन ॥

नागरक के वास भवन का वर्णन सूत्रकार इस प्रकार से करता है कि भवन आसन्नोदक, वृक्षवाटिका विशिष्ट, विभक्त कर्म कक्ष और दो प्रकार के वासगृह से युक्त हो अर्थात् यह वासभवन नदी बावी इत्यादि जलाशय के निकटहो, जिस ओर को जलहो उसही

---

* नगरमष्ट शतग्रामी मध्ये तद् व्यवहारस्थानम्। (टीका)

ओरको वृक्षवाटिकाहो, भवन में काम काज के लिये कई एक कमरे अलग २ हों और दो वासभवन वा शयनगृहहों। नागरक लोगों के लिये ऐसा घरही अच्छा होता है।

वाहिरी घरकी सामग्री॥

शयन करने की खाट आदि पर शिराने और पैताने दो तकिये रक्खे हों उसके ऊपर एक सफेद चादर बिछीहो। टीकाकार कहता है कि पलँगकी चादर को दो २ तीन २ दिनके अन्तर पर धुलाना चाहिये। कदाचित् वगली तकियों का चलन उनदिनों में नहीं था यदि होता तो यहां पर कुछ न कुछ वर्णन पायाही जाता। सुना जाता है कि अवतक साहव लोगों में यह प्रथा नहींहै। जिन्होंने कलकत्ते के राज भवन में राज प्रतिनिधिका विस्तर देखा है वह कहतेहैं कि उस विस्तर में सिराने और पैताने एक२ तकियाही लगा हुआहै॥ २॥ प्रति शय्यिका, शयन करने की खाटसे इसका दर्जा कुछ नीचा होताहै * आचार वान लोगोंके यहां परही इसप्रकारकी प्रतिशय्यिका होती थीं॥ ३॥ खाट के सिरहाने कूर्चस्थान अर्थात् कुशासन और वेदिका होती थीं। शयन करने के पहले नागरक लोग इस कुशासन पर बैठकर इष्टदेवता का स्मरण करते थे और वेदीपर रातका बचाहुआ अनुलेपन, हार सिक्थपात्र सौगन्धिक पुटिका बिजौरे के छुकले और पान रक्खे जाते थे। सिक्थपात्र के व्यवहार का वर्णन आगे लिखा जायगा॥ ४॥ सौगन्धिक— सुगन्ध पदार्थोंसे बनाहुआ पसीना दूर करने का लेप। उसकी पुटिका अर्थात् तमालादि के पत्ते का आधार। मुखकी विरसता और वायु कोपके निवारण करने को बिजौरे नीबू की छाल या छुकले काम में लाए जाते थे। आयुर्वेद शास्त्र में भी इसका प्रमाण मिलता

* [illegible] प्रतिशय्यिका किञ्चिन्नीचैः [illegible] [illegible] । [illegible] । * * [illegible] (टी०) पृ० ४५॥

है । यथा यदि पुरुष संध्याके समय मातुलुङ्ग दलका कल्क शहत के साथमिलाकर चाटै तो कुपित वायु उसको लज्जा नहीं देसकती । भूमि में ।५। पतद्‌ग्रह या पीकदान । पतत् वस्तुको ग्रहण करने से पतद्‌ग्रह नाम हुआ । ६ नागदन्ता व सक्तवीणा । (नाग दन्तका परिचय अनावश्यक है) । ७ । चित्रफलक । ८ । वर्त्तिका सह्युद्गक अर्थात् चित्र बनाने के लिये तुलीका बाक्स । शकुन्तला में भी इसकार्य के लिये वर्त्तिका करण्डक शब्दका प्रयोग देखा जाता है । ९ । कोई पुस्तक । साधारणतः ऐसा नियम होनेपरभी टीका कार कहताहै कि उससमय जो पुस्तक नई लिखी जाय या प्रकाशित हो उस पुस्तक को समझना चाहिये * ।

१० कुरन्टकमाला—अर्थात् कुरन्टक वा कटसरइयाँ फूलकी माला इसफूल में गंध नहीं होती, केवल सुन्दर ही होता है । कहतेहैं कि इस फूलके धारण करने से सौभाग्य बढ़ताहै, पहले इस लिये धारण किया जाताथा कि सहजसे ही मलीन नहीं होता है ॥ ॥ ११ ॥ विस्तर के निकटही भूमि में समस्तक बृस्तास्तरण आकर्षफलक और द्यूतफलक रक्खा होता है । समस्तक अर्थात् मस्तकरक्षा करनेका उपाय समेत आसन विशेष । बृस्तास्तरण (अज्ञान है) टीकाकार ने व्याख्यान करके केवल इतनाही कहाहै कि " लोके प्रतीतम् " अर्थात् लोक प्रसिद्ध है । आकर्षफलक अर्थात् पाशा खेलनेका छक्का । द्यूत शब्द से साधारण वह जुआ समझाजाताहै जिसमें दाव नहीं लगायाजाय । पाश क्रीड़ाभी द्यूतक्रीड़ा है । तथापि टीकाकार कहता है कि उसका प्रधान्य है और अज्ञान निबन्धन उसका पृथक् उल्लेखकिया गया है । द्यूत क्रीड़ा के भी दो

---

* यत् तदानीं काव्यं भावितं तत्पुस्तकौ वाचनार्थं स्यादित्यर्थो देवावगम्यते (टी०) पुस्तक वाचन या Recitation की प्रथा उस समय विशेष रीति से प्रचलित थी जो एक स्वतंत्र कला विवेचित होती और आदर के साथ सिखाई जाती थी । इस कारण से ही नायक के शयनगृह में पुस्तक रक्खी जाती थी ।

भेद हैं सजीव और निर्जीव। आजकलकी horse Racing कीनांई दावलगाकर मेषयुद्ध, कुक्कुट युद्ध (मुरगों की लड़ाई) इत्यादि सजीव द्यूत हैं और पाश क्रीड़ा निर्जीव द्यूत है। रहन सहन के घर में जो द्रव्य रहते थे, उनकी सूची यहां समाप्त हुई ॥ १२ ॥ वा-सगृह के वाहिरे क्रीणा शकुनि पंजर और जिस स्थान से हठात् देखा नहीं जाता है, ऐसे स्थानमें तक्ष कर्म व तक्षणका स्थान और अन्यान्य क्रीड़ा करने के लिये द्रव्य निर्माण करनेका स्थान। शय्या सनादि निर्माणके स्थानका नाम तक्षण है। कुन्दन द्वारा द्रव्य विशेषके निर्माणका नाम तक्ष वा तक्षकर्म है उसका स्थान। " तक्षकर्माणि कुन्द कर्मान्यपद्रव्यार्थानि " अपद्रव्य प्रस्तुत करनेके निमित्त कुन्द कर्मको तक्षकर्म कहते हैं। जिससमयकी वात होती है उस समय में "अपद्रव्य,, का व्यवहार विशेष भाव से प्रचलितथा। यह समस्त अपद्रव्य सुवर्ण, रजत, ताम्र, कालायस, गजदन्त, शृंग, सीसका-दि से वनते थे। इन्द्रिचरितार्थ के लिये जो द्रव्य वनाये जाते हैं उनको अपद्रव्य कहते हैं। इन अपद्रव्योंका स्त्रीराज्य और कोशला में विशेष प्रचार था। आयुर्वेद शास्त्र में जिन्होंने शुक्रदोषादि काराध्याय पढ लिया है वोह अपद्रव्यकी वात से विस्मित नहीं होंगे। आयुर्वेद के भी इस प्रसंग में वात्स्यायनजी के ग्रंथका प्रमाण लिया गया है।

इस वात से स्पष्ट प्रमाणित होता है कि हमारे पूर्व पुरुषगणभी विलास और चपलता में वर्तमान अंगरेज या फ्रांसवालों से कम न थे। इस के अतिरिक्त वृक्षवाटिका में भी कतिपय द्रव्य रहतेथे। यथा:- सुप्रच्छन्न, ऊपर भाग में लता इत्यादि से ढकाहुआ प्रेंखा -- दोला और वैठने के लिये या मद्यादि पान करने के लिये ईंटों के वनेहुये छोटे २ चबूतरे। भारतवर्ष में पहिले दोला अथवा हिंडोलेका वहुत ही व्यवहार था, यह दो प्रकार के होते थे यथा :- प्रेंखा दोला और चक्रदोला। प्रेंखादोला-प्रेंखन अर्थात् प्रेरणा [हलना] से संचालित होता था। ज्ञात होता है कि यह वर्तमान कालका नागर

डोला है, दूसरा चक्रडोला चक्रभ्रमण से आन्दोलित होता था। इस समय भी कहीं२ इन दोनों हिन्दोलोंका प्रचार देखा जाता है। पुरुषगण, स्त्रियोंको इनहिंडोलोंपर चढ़ाते और " दोलाभि प्रेरणात्रस्त ,, स्त्रियोंके मुखसे उच्चारित होतेहुए लयशून्य संगीत से आनन्द मानते थे। महाकविदंडी के काव्यादर्शमें इस अर्थ का एक श्लोकहै:—" दोलाभि प्रेरणा त्रस्त वधूनन मुखोद्गतम्। कामिनां लयवैषम्यं गेयं रागमवर्द्धयेत् ,, काव्यादर्श, पृ० ४६०॥ अबतकभी मथुरा, वृन्दावन और व्रजभूमि के समस्त स्थान और तत् पार्श्ववर्त्ती देशों में वर्षाका आगमन सूचित होतेही हाट, वाट, वन, उपवन तथा विहार स्थानों में झूले (हिंडोले) पड़जाते और " झूलन पधारो प्यारी वर्षाऋतु आई हो। उमड घुमड आये कारे पीरे बदरा पवन चलत पुरवाई सुखदाईहो ,, इत्यादि राधाकृष्ण विषयक गीत गाये जाते हैं।

यहां वहिर्गृहकी सामग्रीका वर्णन समाप्त हुआ। इस वर्णन से समझा जाता है कि उस समय नगर वासियों में चित्र विद्या और वीणा वादनादि वैहारि शिल्प (finearts) का भली भांति से प्रचार था; शय्यासनादि व दूसरे विलास द्रव्योंको बनाने के लिये प्रत्येक गृहमें निर्दिष्ट स्थान थे; सजीव और निर्जीव द्यूत क्रीड़ा का बहुतसा प्रचार था और हार, उवटनादि, बहुत से गन्धद्रव्यभी काम में लाये जाते थे उसकाल में संगीत विद्या यहां तक फैलगई थी कि स्वामी अपनी नवोढास्त्री को उपहार की वस्तुओं के साथ वीणिका (क्षुद्रवीण) और श्याम वर्णक (चित्र कर्मोपयोगी चूर्ण विशेष) भेजा करता था.

यथा—" वीणिकानां, पिंडोलिकानां, पटोलिका नाम लक्तकमनाः शीला हरिताल हिंगुलक श्याम वर्ण कादीनां तथा चन्दन कुंकुमयोः प्रच्छन्नं दानं,, पुत्तलिका के बक्स का नाम पिंडोलिका और पुत्तलिकाके साज रखने के बक्स का नाम पटोलिका है, चित्र

कर्म के योग्य चूर्ण विशेष (राजावर्त्तचूर्ण) का नाम श्यामवर्णक है (टीका २१० पृष्ठ०)

सन ईसवी या उससे पहिले के लिखे हुए मृच्छकटिक नाटक से भी ऐसे चित्र का ही आभास पायाजाता है मृच्छकटिक का ब्राह्मण युवा चारुदत्त अत्यन्त निर्धन होजाने पर भी विलासिता को जो उस समय अधिकता से फैल रहीथी नहीं छोड़सका। उस समय भी उसकी चादर (प्रावारक) चँबेली के फूलों में बसाई जाती थी.

इसके उपरान्त गृहस्थ के नित्य और नैमित्तिक कार्य्यों का वर्णनहै नित्यकर्म्म — " नागरक को उचित है कि प्रातःकाल ही उठ कर नियत कर्म्म शौचादिको करके दतौन करे, थोड़ा अनुलेपन लगावे धूप और हारको ग्रहण करे अधर पेसिकथ महावर लगावे दर्पण में मुख देखे फिर मुख -- वास ताम्बूल को ग्रहण करने के पीछे प्रति दिन के कार्य्यों का अनुष्टान करे. टीकाकार कहता है कि दतौन करनेके पीछे सन्ध्यावन्दनादि का अनुष्ठान अर्थ प्राप्तहै. थोड़े से अनुलेपन के ग्रहण करने का यह आशयहै कि बहुत से अनुलेपनका ग्रहण करना नगरवासियों के आचारसे विरुद्ध है. " प्रभूतानुलेपनादि ग्रहणाद नागरक स्यात् ,, अर्थात् अधिक अनुलेपन के व्यवहार करने से गँवार मानाजायगा स्रक अर्थात् माल्य शब्द से शेखरक और आपीड़ इन दोप्रकार की मालाओं का बोध होताथा॥ शिरपर धारण की जाने वाली मालाका नाम शेखर और गले में पहिरी जाने वाली मालाकानामआपीड़ है सिक्थ्यादि व्यवहार का वर्णन—पहिले गृह सामग्री का वर्णन करने के समय हम सिक्थ करण्डक के साथ कर आये हैं. परन्तु यह नहीं जाना जाता कि सिक्थ किस कारण और किस रूपसे व्यवहार किया जाता था.

सिक्थ नाम मोमका है. उसके व्यवहार संबन्ध में टीका कार कहता है कि " इम दार्द्रपाकक्तक पिन्ड्या दृष्टोष्टं ताम्बूल मुपयुज्य सिक्थ गुटिकया तारपादित्यर्थकम:" पृष्ठ४८ अर्थात् पहिले तो कुंकु

गीले अलक्तक पिन्ड से अधर घिसकर ताम्बूल भक्षण करने के पीछे शिक्थ गुटिका से पुनर्वार उसको ताड़न करै. ज्ञात होताहै कि अलक्तक और ताम्बूल के रंगको जमानेके लिये यह विधिकी जाती थी. इनदिनों अंग्रेज फराशीशी इत्यादि जातियों में भी इस भाव से अधारादि में Gum व्यवहार का वर्णन कभी कभी पढ़ाजाता है. उपरोक्त वर्णन से निश्चय होता है कि उस समय मनुष्यगण भी अधरोंपर अलक्तक और शिक्थ का व्यवहार करते थे. कालिदास के कुमारसम्भव में भी इस भाव का वर्णन देखा जाता है यथा—

" रेखःविभक्तः सुविभक्तगात्र्याकिञ्चिन मधुच्छिष्टवि-मृष्टरागः। कामप्यभिख्यांस्फुरितैपुरष्यत आसन्नलावण्य फलाधरोष्ठः ,, (सातवाँ सर्ग १८ श्लोक)

" अर्थात् सुविभक्तगात्री पार्वतीजी के रेखा विभक्त, ईशत मधुच्छिष्टसे निर्मलीकृत राग और आसन्न लावण्य फल अधरोष्ट स्पन्दित होकर एक प्रकारकी अनिर्वचनीय शोभाको धारण किये हुएथे " इस श्लोक के " ईशत मधुच्छिष्ट विमृष्ट राग ,, इसविशेषण की व्याख्या में मल्लिनाथ कहते हैं कि जिससे अधरकी ललाई नष्ट न हो इस कारण उसपर शिक्थ लेप लगाया जाता है " हिमव्य-पायातविशदाधराणां आपाण्डुरीभूतमुखच्छवीनां " इत्यादि श्लोककी व्याख्या में उनका मत है कि स्त्रियां हेमन्त काल में शीत के भयसे अधरों पर मोम लगाती हैं यह बात प्रसिद्ध है शिक्थ का यह, लेप भी अधरके रंगको जमाने के लिये लगाया जाया करता था। इस समय देखते हैं कि केवल स्त्रियांही नहीं वरन पुरुष गणभी हेमन्त मेंही नहीं वरन सबही समय, केवल शीत भयसेही नहीं वरन अधर रंगकी रक्षा करने के लिये इस प्रकार से सिक्थका व्यवहार करते थे जैसे आजकल पमेटम इत्यादि विलायती वस्तुओंका व्यवहार किया जाता है। दर्पण में मुख देखना सौभाग्य का कारण समझाजाता

है। मुखवास एक प्रकार के गन्धद्रव्य को कहते हैं जो मुख में व्यवहारहोता है। टीकाकारका मत है कि;—गन्धयुक्तिविहितां मुखवासगुटिकां कपोले निधाय पुनरुपयोगार्थं ताम्बूलं हस्तवर्त्तिकायां गृहीत्वेत्यर्थः।' अर्थात् गन्धयुक्ति के शास्त्रानुसार बनीहुई गन्धद्रव्य विशेषकी गोलियां गालों में आवर्त्तन करके पुनर्वार भक्षण करने के लिये पान, हस्तवर्त्तिकासे संग्रह करके दैवसिक कार्य का अनुष्ठान करे॥ गंधयुक्ति विद्या ६४ कलाके अन्तर्गत है, इस विद्या में यही वर्णन है कि कौन २ द्रव्यके मिलानें से कौन २ सुगन्धि द्रव्य बनताहै। कादम्बरी में इस शब्द का अर्थ ताम्बूल करके किया है।

उपरोक्त वर्णन से पायाजाता है कि उस समय हमारे सनातन धर्मावलंबी पूर्वपुरुषगण विलासिता और सजधज में बहुतही चतुर थे। वे अधर में अलक्तक और सिक्थ, कपोलों पर मुखवास, शिरपर शेखरक, गलेमें माला और सर्वांगमें अनुलेपन का व्यवहार करते थे, इस के अतिरिक्त स्वेद निवारण करनें के लिये रात्रि में एक प्रकार का सुगन्ध चूर्ण व्यवहार किया जाताथा।

इसके बाद शरीरका नया संस्कार करने के लिये नित्यानुष्ठान की कथा है. १ स्नान नित्य किया जाता था २ उत्पादन अर्थात् पांओं से अंगका मर्दन करना दूसरे दिन होता था. शरीर को दृढ़ करने के लिये यह कार्य किया जाता था. अङ्ग मर्दन की यह क्रिया हाथ और पांव दोनो से ही सम्पादन हुआ करती थी, चरण के द्वारा अङ्ग मर्दन को उत्सादन और हाथ के द्वारा अङ्ग मर्दन को संवाहन करते थे, उस समय के मनुष्य इतने संवाहन प्रिय थे कि बहुत से आदमी संवाहकता करके ही अपना निर्वाहकरते थे मृच्छकटिक पढ़ने से जाना जाता है कि एक मनुष्य ने जुए में अपना सब कुछ हारकर अन्त में संवाहक की वृत्ति को स्वीकार कियाथा, इधर पश्चिम और पंजाब में अब तक बहुत से मनुष्य इस वृत्तिको अवलम्बन करके अपना निर्वाह करते हैं, और कभी २ बड़े २ वागों

को भी इस संवाहक कार्य से क्षणभर में दूरकर देते हैं यूरुप वाले भी आजकल इसके पक्षपाती हो गयेहैं, ३ फेनक—इसका व्यवहार प्रति तीसरे दिन होताथा, ज्ञात होताहै कि यह किसी प्रकार का कषाय द्रव्य होगा, यह इस अभिप्राय से जांघों में अर्थात् जांघों से लेकर चरणोंतक के शरीर भाग में इस अभिप्राय से लेपित किया जाता था कि उक्त अंग कड़े न हो जांय, उक्त द्रव्य अत्यन्त प्रयोजनीय समझा जाकर उन दरिद्र लोगों के साथ भी रहा करता था जो वेश्या और नगर वासियों को कलाका उपदेश देतेहुए प्रत्येक नगर में भ्रमण किया करते थे ऐसे दरिद्री लोगों का पीठ मर्द नाम था, ४—आयुष्य अर्थात् और कर्म प्रति चौथे दिन कराया जाता था, ५ इसी प्रकार प्रत्यायुष्य, यहभी क्षौर कर्म का एक भेद है जो पांचवें या दशवें दिन किया जाता था, हस्तादि के द्वारा रोमादि का उत्पादन करना एक प्रकार का प्रत्यायुष्य है. यह दशवें दिन हुआ करता था. एक समय में हस्तादि द्वारा रोमादि के उखाड़ने की पृथा बहुत ही फैल गई थी इसी कारण आयुर्वेद में इसका निषेद है ६ सर्वदा ही वस्त्रादि से ढके हुए कक्षा देश का स्वेद दूर करना। (सात त्याचं संवृत्त कक्षा स्वेदाप नोदः) ७ सवेरे और दुपहर दो बार भोजन इसको अवश्य प्रातराशाति रिक्त भोजन समझना चाहिये कारण कि प्रातराश की रीति अति प्राचीन है. रामायण महाभारतादि प्राचीन ग्रंथों में भी इसका व्यवहार दिखाई देता है मृच्छकटिक का " अर्थ ,, रुपया पैसा प्रातराश के साथ तोला गया है, अर्थात् रुपया पैसा प्रात राशकी समान तुच्छ वस्तु है इसभाव का एक प्रवाद वाक्य उल्लिखित हुआ है परन्तु चारायण नामक आचार्य कहता है कि अपराह्न में भोजन न करके सायंकाल को भोजन करनाही उचितहै वह यहभी कहता है कि रात्रि के भोजन से शरीर में जैसा बल आताहै वैसा अपराह्न भोजनसे नहीं "न चापराह्ने द्वितीय भोजन बलमावहे यथा रात्रौ,,

८ पूर्वाह्न भोजन करने के पीछे शुकशारिका प्रलापन अर्थात् पक्षियोंका पढ़ाना, लावक (बाज) कुक्कुट (मुर्गे) और मेष युद्ध कराना, अनेक प्रकारकी कला क्रीड़ा तथा पीठ मर्द, विट, और विदूषक का कार्य. टीकाकारका मत है कि यह कला कुछभी नहीं थी केवल प्रहेलिका प्रतिमाला इत्यादि श्लोक रचनाकी चतुरता दिखाई है. मध्य समय में इसप्रकारकी श्लोक रचना, कौशल उत्तम रचना का एक अंग समझी जाती थी, यही कारण है जो हर्षचरित में वासव दत्तानामक आख्यायी के प्रशंसा सूचक निम्न लिखित श्लोक दिखाई देते हैं यथा–"कविनामगलत्दर्पो नूनंवासव दत्तया। शक्त्येव पाण्डु पुत्रानां गतया कर्ण गोचरम्," अर्थात् " जिसप्रकार कर्ण गोचर अर्थात् कर्ण के निकट रक्खी हुई वासवदत्त (इन्द्रदत्त) शक्ति से पांडवों का दर्प चूर्ण हुआ वैसेही वासवदत्ताग्रन्थ लोकोंके कर्ण गोचरहोने पर कविजनों का दर्प विगलित हुआथा, श्लेष, अनुप्रास, यमक, इत्यादि काव्य कौशलका जैसा अधिक व्यवहार वासवदत्ता में है वैसा और किसी ग्रन्थ में नहीं है, फिर इस रुचि का प्रादुर्भावहोने से नगरवासी यदि इस समस्त काव्य कौशलका सीखना अत्यावश्यकीय समझें तो इस में आश्चर्यही क्या है ॥

पीठमर्द विट और विदूषक ॥

पीठमर्द, विट, विदूषकायत्त व्यापार अर्थात् वह समस्त कार्य्य जिनमें पीठमर्द, विट और विदूषक की सहायता का प्रयोजन होताहै. पीठमर्द का वर्णन पहिले ही कर आये हैं. इन लोगों के स्त्री पुत्रादि कुछ नहीं होतेथे साथमें केवल गांचपर लगाने का फेनक व कषाय तथा बैठने के निमित्त पीठपर लटका हुआ 'मल्लिका' नामक आसन विशेष रहता था; पीठ मर्द लोग भले आदमियों में आसन नहीं पासकते थे आवश्यकता पड़नेपर अपने ही आसन पर बैठकर वेश्या और नगर निवासियों को कला का

उपदेश दिया करते थे, इसप्रकारका आसन व पीठ संग में रहता था इसकारण " पीठं मृद्नाति ,, इस व्युत्पत्ति से उनको पीठ मर्द कहते थे बोध होता है कि इस समय जो लोग नाचने गाने इत्यादि कार्यों में नाचने वालियों की सहायता करते हैं उनकाही पहिले पीठ मर्द नाम था विट—युवावस्था में जो लोग नागरका चारका अनुष्ठान करके अपना सर्वस्व खोदेते थे और पश्चात् वेश्या और नागर लोगोंके आश्रय से निर्वाह करते थे, इसप्रकार के सकलत्र (विवाहित) गुणवान कलाशास्त्रके जानने वालों को 'विट, कहकर पुकारते थे मृच्छकटिक का 'विट, इन्हीं लक्षणों से युक्त है विदूषक के अधिक वर्णनकी आवश्यकता नहीं इसका दूसरा नाम वैहासिक है, अनेक प्रकार के हास परिहास करके लोगोंका जी बहलानाही विदूषकका काम था प्रत्येक नागर के पास एक विदूषक रहता था, मृच्छकटिक के चारुदत्त का विदूषक सम्वादादि लेकर अपने मित्रकी प्यारी वसन्त सेना के स्थानपर आया जाया करता था, इस कार्य से यह समझा जाता है कि विट और पीठ मर्द इत्यादि कैसे कार्यों में सहायता करते थे, ।९। इसके पीछे दिवा निद्राका वर्णन, दिनका सोना साधारणता निन्दित होने परभी शरीर की रक्षा के लिये ग्रीष्म ऋतु में सेवन किया जाता था, आयुर्वेद शास्त्र भी इसमें संमति देता है, ।१०। सोनेके पीछे वैहारिक वेश (अर्थात् टहलने के लिये जानेका पहरावा) पहरकर गोष्ठी विहार करना, जिन सभासमिती में नागर लोग एकत्र होकर हास परिहास और क्रीड़ा कौतुक करते थे उन सभा समितियों को गोष्ठी कहा जाता था, यहांपर दिवसका वृत्तान्त पूर्ण हुआ ॥

इसके उपरान्त रात्रि के कार्यों का वर्णन है,:—(१) सन्ध्या के समय संगीत अर्थात् नाचना, गाना और बजाना, (२) तदनन्तर सुगन्धित फूलोंसे बसी और सजीहुई बैठक में पीठमर्द विट तथा विदूषकादि के साथ बैठकर अभिसारिका की बाट देखना, अभिसारिका

के आने में विलम्ब होनेपर दूती भेजना या स्वयं जाना, (३) अभिसारिका के आनेपर उसके साथ बात चीत (४) दुर्दिनाभिसारिका अर्थात् बरसने से वर्षा कालकी अभिसारिकाओं का शृङ्गार बिगड़ जानेपर स्वयं उनको सजादेना, और नई अभिसारिकाओं की परिचारिकाओंसे संवाहन वीजनादि, मृच्छकटिककी वसन्त सेनाभी एक दिन दुर्दिनाभिसारिका हुई थी, नागरों में जो लोग पर स्त्री संसर्ग करते थे यहांपर उनका रात्रिवृत्त वर्णन हुआ जो लोग स्वभार्या निरत रहते थे उनका रात्रिवृत्त आगे वर्णन होगा, यहांपर नागरों के नित्य अनुष्ठान का अहोरात्रवृत्त पूर्ण हुआ ।

इसके उपरान्त नैमित्तिक आचरण की बात है नैमित्तिक वृत्त से यह जाना जाता है कि नागर लोग किस निमित्त विशेष के उपलक्ष में कौन२ से कार्य करते थे वह नैमित्तिक कार्य पांच प्रकार के हैं यथा—घटा निबन्धन, गोष्ठी संवाह, समापनक, उद्यानगमन, और समस्या क्रीड़ा इसपुस्तक के दूसरे भाग में शेष वात्स्यायन सूत्रका वर्णन भलीभांति से किया जायगा ।

दूसराभाग समाप्त ॥

॥ श्रीरामचन्द्रायनमः ॥
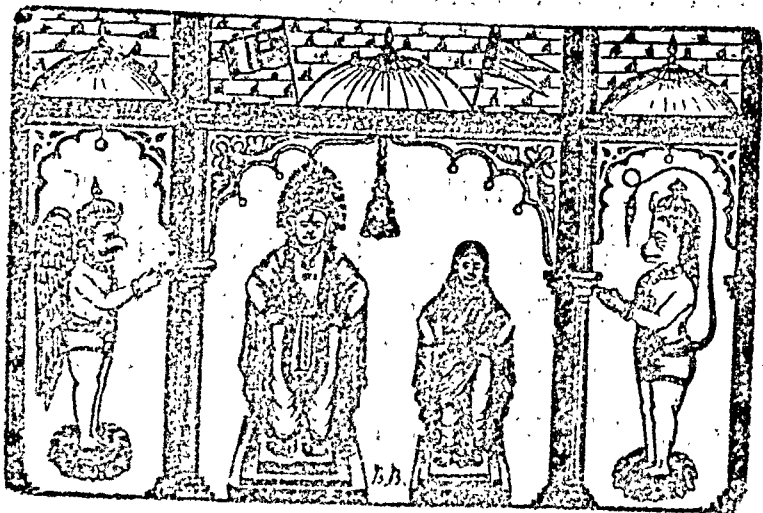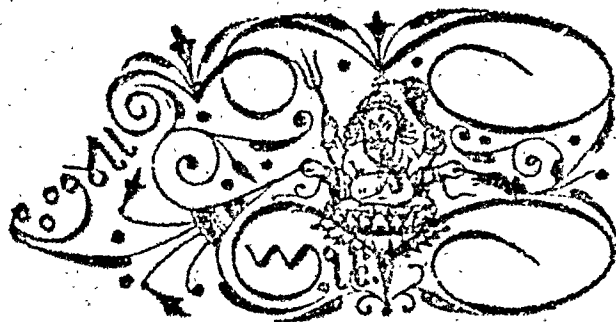
॥ श्रीगणेशायनमः ॥

कोकशास्त्र

तीसरा भाग ॥

(युवतीप्रसूति और जननी के प्रति उपदेश)

अनेक कारणों से स्त्रियों को चिकित्सा का सीखना अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि प्रथम तो स्त्री माता की जाति है, संतान के लालन पालन का भार उन के हाथ में है, वे चिकित्सा को कुछ भी न जानने से बालक के जीवन में प्रति पद संशय है दूसरे वे संसार में मनुष्यों की संगिनी हैं, वे कुछ भी साधारण पीड़ाकी औषधि न जानने से अनेकों को अनवसर मेंही प्राण त्यागना होता है। तीसरे वह अपनी पीड़ा का हाल इतना गुप्त रखती है, कि दूसरेका जानना तो दूर रहे, स्वामी भी उसको नहीं जानसक्ता। इसलिये वह यदि अपनी पीड़ा की औषधी जानसके, तो जगत् का आधा दुःख दूर होजाय। और इनके ही शरीर के ऊपर मनुष्यों का शारीरिक और मानसिक सुख व स्वच्छन्दता संपूर्ण निर्भर है। इनसब कारणों से स्त्रियों की शिक्षा के मध्य में चिकित्सा शास्त्र एक शिक्षा का प्रधान विषय होना विशेष कर्तव्य है। चिकित्साका सीखना

तो दूर रहे, वह इंद्रियों के संबंध की सब बातों को छिपाती हैं, इसीकारण से उनके बहुत रोगों का हाल चिकित्सा शास्त्र भी नहीं जानसक्ता, इस छिपानेही ने स्त्री जातिका सर्वनाश किया, यह गुप्त रखनाही हमको सदा रोगी, सदा हीन और क्षीण करताहै। चिकित्सा शास्त्र अश्लीलता का आधार नहीं है, इन्द्रियों का हाल जानना कोई लज्जा की बात नहीं है, इसके प्रतिक्षण ज़हर उगलता हुआ देखते हैं, फिर क्या समझकर उसको ही हृदय में पालकर रखते हैं, जिस आश्चर्य के नियम से मनुष्य जातिका जन्म होताहै, वह पवित्र विषय, क्या लज्जाका विषय बकवादकी बात, सुनने के अयोग्य और नीच विषय है ? इस उन्नत समय में यह सब बात मनुष्य के मुख से शोभा नहीं पाती । हम आशा करते हैं कि कोई भी लज्जा का विषय न जानकर इसको प्रत्येक मनुष्य सीखेगा. संपूर्ण देश वासिनी दुःखनी गण मुख खोलकर नहीं कह सकतीं, छिपे छिपे कठोर पीड़ा की यंत्रणा से दिन दिन क्षय को प्राप्त होती हैं, सन्तान उत्पन्न करती है चिर रुग्न (सदा रोगी) इसलिये देश में मनुष्य अधमरे, पीड़ित, दुर्बल और दुर्दशापन्न उत्पन्न होते हैं, इस अवस्थामें और किसी को भी निश्चिंत रहना उचित नहीं है, आसाम देश में जो स्त्री कपड़ा बुन्ना नहीं जानती, उस से कोई भी विवाह करना नहीं चाहता । इसी प्रकार संपूर्ण पृथ्वी के मध्य में जो स्त्री चिकित्सा नहीं जानती उस से किसी को भी विवाह करना उचित नहीं है । कब वह दिन पृथ्वी पर होगा, कब मनुष्य समझेंगे कि मन को जिस प्रकार ऊंचा करना होता है, शरीर को भी वैसेही ऊंचा करना कर्त्तव्य है । चोरी करना जैसा पाप है, शरीर को रोगी करना भी वैसाही पाप है । यह विश्वास हृदय में दृढ़ रहने से हम इस पुस्तक में लिखने को तत्पर हुये हैं । स्त्रियों की चिकित्सा, और उन की देहका तत्व और शिशु पालन शिक्षा नितांत आवश्यक जानकर और देशमें इन सब के योग्य कोई पुस्तक न देखकर इस

पुस्तक के लिखने को प्रस्तुत हुये हैं। इस पुस्तक में स्त्री चिकित्सा का संक्षेपसे सब ज्ञान समझा देनाही हमारा अभिप्राय है।

आद्य ऋतुसे अंत ऋतुतक स्त्रियों के शरीर का किस प्रकार यत्न करना उचित है, संतान उत्पादन इत्यादि के संबंध में क्या करना विहित है, इस समयमें पीड़ा होने पर उसकी चिकित्सा क्या है! नारी शरीरके संबंध में इस प्रकार अनेक तत्व इस पुस्तक में संकलन किये हैं। इस के साथ शिशुपालन शिशु चिकित्सा और साधारण पीड़ा की चिकित्सा का हालभी संगृहीत कर दिया है।

विवाह ॥

सावधान रहने से मनुष्य को पीडा का होना संभव नहीं है, अकाल मृत्युतो होही नहीं सकती। यत्न सहित रखने से मनुष्यका शरीर क्रमशः पूर्णता को प्राप्त होता है, यही स्वभावका नियम है। संसार के अदल बदल से दिन दिन होता रहेगा; स्त्री जाति की कितनीही वृत्तिसुविकाशित होगी पुरुष भी वाहिरी और आभ्यान्तरीण परि वर्त्तन के वश से पूर्णता प्राप्त करताहै। यौवन काल लिखे हुए पार वर्त्तन समूहकी सीमा है, अतएव इसी समय में कितनी ही वृत्ति पूर्ण विकाश को प्राप्त होती हैं। प्रगट हुई वृत्तियों का चलाना आवश्यक है, नहीं चलाने से पीड़ा होती है। जवानी में प्रकट हुई वृत्तियों का चलाना विवाह के सिवाय और किसी उपाय से नहीं होसक्ता। इस लिये युवा अवस्था मेंही मनुष्य का विवाह करना चाहिये॥

मनुष्यजाति के मध्यमें विवाह एकमहान व्यापारहै विवाह किया और वंधी हुआ। एकके सुख दुःखके साथ दोगनोंका सुख दुःख मिलगया। शरीर और मन दोनों परस्पर के ऊपर विशेष निर्भर करना आरंभ करते हैं। विवाह के बाद के मानसिक परिवर्तन का हाल हम यहां नहीं कहेंगे। हमारे कार्य आदि शरीर परहै, इसमें

शरीर काही हाल कहेंगे । मानसिक नीति के संबंध में उपदेश प्रदान करना इस पुस्तक का उद्देश्य नहीं है, इस बात को कोई न भूले । सुनीति के संबंध में कोई बात न कही ऐसा जानकर कोई मन में यह न समझे कि मानसिक उन्नति के विषय में हम कुछ नहीं जानते ॥

अनेक देशोंमें अनेक प्रकार की अवस्था में विवाह होता है। किस देश में किस अवस्था में विवाह करना ठीक है, इसका कहना सहज नहीं है । तौ भी हमारे मतसे यदि शरीर का स्वास्थ ठीक हो शरीर में किसी प्रकार की पीड़ा न हो तब ऋतु होने के प्रथमही स्त्रियों का विवाह करना चाहिये । * पति और स्त्रीकी अवस्था में कमसेकम आठ नौ वर्षका अन्तर होनाही विशेष प्रयोजन है । शरीर स्वस्थ न रहनेपर स्त्री हो वा पुरुष हो किसी का भी विवाह करना नहीं चाहिये । स्त्री यदि पीड़िता होगी, उसकी पीड़ा पुरुष में जायगी संतान में जायगी । और पुरुष यदि पीड़ित होगा, तो वह पीड़ा स्त्री और सन्तानको जायगी ।

जब कि सन्तान सन्तति पर्यन्त सुख दुःख तुम्हारे स्वास्थ्य के ऊपर निर्भर किया है, तब नहीं जानते कि किस साहस से जानकर व सुनकर पीड़ित अवस्था में विवाह करते हैं, निरपराध बालकों को चिररुग्न (सदा रोगी) करना यदि महापातक नहीं है, तब नहीं जानते कि और पाप क्या है ! इन सब कारणों से विवाह

---

* बहुत कहते हैं कि हमारे समाज में यह किसप्रकार होगा ? यद्यपि इसप्रकारके प्रश्नका उत्तर देना इस पुस्तक का उद्देश्य नहीं है तोभी कुछ कहे बिना न रहेंगे । जो कर्तव्य कार्य है वह चाहे जिसप्रकारहो, अवश्य करना होगा । हमारे देश में प्रथम और द्वितीय यह दो विवाह होते हैं । प्रथम विवाह न होकर उसी समय में वाग दान वा पत्र भेजकरभी सब काम चलसकताहै । तिसके पीछे ऋतुहोने पर शुभ दिन में विवाहकरना चाहिये यहभी यदि सम्भव न हो, तो जबतक ऋतु नहो तबतक स्त्री पुरुष को एकत्रित न रहने देना चाहिये ॥

करने के पहिले स्त्री पुरुष दोनों ही को अपने अपने स्वास्थपर दृष्टि रखना चाहिये ।

स्त्री पुरुष विवाह के संबंध में बद्ध होनेके पहले उनमें समान बल और तेज है वा नहीं, इस विषय पर भी दृष्टि रखने का विशेष प्रयोजन है । यदि स्त्री की अपेक्षा पुरुष बलवान हुआ तो स्त्री शीघ्रही दुर्बल होजायगी, उसके संतान होने की संभावना बहुत थोड़ी रहेगी और यदि संतान हुई भी तो रोगी और क्षीण होगी । और यदि स्त्री पुरुष की अपेक्षा बलवती हुई, तो पुरुष शीघ्रही दुर्बल हो जायगा । उसकी मृत्यु न भी हो, तौभी वह किसी कठोर पीड़ा से ग्रसित होगा, उसके संतान न होने की पूरी संभावनाहै । यदि संतान हुई, तो वह संतान रोगी और क्षीण होगी और उसके कन्या संतानही अधिक होने की संभावना है । स्त्री पुरुष का बल समान न होनेसे दोनोंकी काम वृत्ति असंतुष्ट रहेगी इस लिये उस के द्वारा शारीरिक और मानसिक जो कुछ हानि हो सकती है उस के लिखने की आवश्यकता नहीं है ।

इन सब कारणों से विवाह के पहले स्त्री पुरुष के सब मानसिक गुण देखे जाते हैं, जिसी प्रकार शारीरिक स्वास्थ की ओर भी देखना चाहिये ।

ऋतु ॥

स्त्रियों की ऋतुही यौवन का लक्षण है । ऋतु होनेपर जाना जाता है कि यह स्त्री गर्भ धारण करने में समर्थ हुई है । जिस समय यौवन पूर्ण होजाता है तभी ऋतु आरंभ होती है । विख्यात चिकित्सक डाक्टर " हो या इर्टड " ने नीचे लिखे सब चिन्ह यौवन के लक्षण कह कर लिखे हैं ।

यौवन के लक्षण । [illegible] की ओरी सब पूर्णता को प्राप्त होती है, दोनों विस्तृत स्तन दृढ़ ऊंचे और पूर्ण होते हैं, गर्भस्थली भी योनि के संग [illegible] जाती है, छाती गला और हाथ पूर्णता को

प्राप्तहोते हैं, संपूर्ण शरीर गोल पूर्ण और बड़ाहोताहै, केश अधिकता से उत्पन्न होते हैं, कामेन्द्रिय के संग जिस जिस स्थलका संबंधहै, तहां बहुत से केश उत्पन्न होते हैं। स्वर मीठा और गंभीर होताहै संक्षेपसे समस्त शरीर में वही माधुरी, वही तेज और वही सौन्दर्य प्राप्त होता है, जो युवती मेंही हम देखते हैं। जिस समय योवनकी पूर्णताहोतीहै, तभी ऋतु आरंभ होतीहै। किन्तु किसी २ को आगे भी होती है, वह स्वाभाविक नहीं है। जो स्त्रियें नगर में वास करती हैं, मांसादिक अधिक भक्षण करती हैं, भोग करती हैं, सदा नाटक उपन्यास पढ़ती रहती हैं, जो थोड़ी अवस्था में संग दोष वशतः इन्द्रिय उत्तेजित करना सीखती हैं, उन को ऋतु आगही आरंभ होती है। ऐसा होने से स्वास्थ भंग होजाता है, संतान दुर्बल और रुग्न (पीड़ित) उत्पन्न होती है, और शरीर को अनेक प्रकार की पीड़ायें आनकर घेर लेती हैं, इस लिये यौवन काल पूर्ण मात्रा आने के पहले जिस से ऋतु न होजाय, इस विषय में सावधान रहना चाहिये। जिस से किसी प्रकार बालिका के हृदय में इन्द्रिय उत्तेजक भाव न ठहरे, वही करना उचितहै, । किस कारण असमय में ऋतु होती है, वह प्रथम ही लिख चुके हैं, बालिका जिससे उन सब कारणों के प्रभावके आधीन नहो, ऐसा करने सेही अकाल वर्द्धक की जड़ अकाल ऋतु नहीं दीख सकती।

ऋतु क्या है ? ऋतु और कुछ नहीं है, केवल गर्भ धारण करने के समय दिखाने का चिन्ह मात्र है। जब स्त्रियें पूर्ण यौवना होती हैं, जिस समय उनके सब अंग प्रत्यंग पूर्णता को प्राप्त होते हैं, तो उन को स्वभाव सेही नूतन मनुष्य का जन्म देनेकी सामर्थ होती है। संसार का नियमही यह है ईश्वर के राज्य की प्रथाही यह है। तुम यत्न करो अथवा मतकरो पेड़ होगा, फूल होगा, फल होगा फिर सूख जायगा। इसी प्रकार तुम संतान की चाहना करो, वा मत तुम्हारे संतान होने की सामर्थ आपही होगी। अन्य २ प्राणियों में

संतान उत्पादन करने का एक २ नियत समय है, इससमय उनकी कामेच्छा अत्यन्त प्रबल होती है। मनुष्यों का यह नियम नहीं है। प्रति मासही स्त्रियें संतान उत्पन्न करने के उपयुक्त होती हैं, इस समय सहवास करने से संतान होना अतिशय संभव है स्त्रियों के उदर में डिम्ब कोष है डिम्ब कोषस्थ चर्म थली के रक्त से प्रति मास में अंड की समान छोटा पदार्थ उत्पन्न होता है। क्रमानुसार प्रायः एकमास पूर्ण होनेपर यह डिम्ब कोष फट जाता है। तिस समय रक्त निकलता है, और क्रमसे ही यह छोटे अंड गर्भस्थली के पार्श्व में नाभि से जा मिलतेहैं, रक्तादि मूत्र मार्ग द्वारा बाहर निकल जाता है। इस प्रकार किसी के दोतीन दिन और किसीके पांच सात दिनतक रक्त निकलता है। इसकोही लोग ऋतु कहते हैं यह अंडागर्भ स्थली के बगल में जाकर रहता है फिर उसके संग पुरुष का वीर्य मिलने से मनुष्य का जन्म होता है। जन्म प्रकरण नामक परिच्छेदमें यह विषय विशेष करके लिखेंगे। आशाहै कि उसको सभी मनलगाकर पढ़ेंगे यहांपर तो केवल संक्षेप से लिखा गया है। स्त्री जाति की ऋतु एक बड़ी बात है। ऋतु काल में असावधान रहने से स्त्रियों को अनेक पीड़ाओं की यंत्रणा भोगनी पड़ती हैं केवल यही नहीं, इस समय शरीर के ऊपर सम्यक् दृष्टि रखने न रखने से संतान संतति सुखी वा दुःखी होती है। पीछे यह सब लिखा जायगा।

प्रथम ऋतु का होना किसी भयका कारण नहीं है।—जिससे शरीर स्वस्थ रहै, वही करना कर्तव्य है। शीतल जल, हिम, और शिशिर, ठंडी व जली व वायू वा और किसीप्रकार की दूषित वायु इत्यादि शरीर में लगने देना अतिशय अकर्तव्य है। यदि ऋतु कालमें ज्वर हो, तो वह ज्वर शीघ्र नहीं जायगा। यह सब जानकर ऋतु होनेपर अति सावधान रहना चाहिये। एक बार होकर फिर नहीं होगी, ऐसा न जानना, ऋतु प्रत्येक महीने में एक बार होगी

है, ठीक चौवीस, पच्चीस दिन का अंतर होना उचितहै। * पहिले भले प्रकार सावधान न रहने से रजोदर्शन काल के अनियमित होनेकी संभावना है। एकवार अनियमित होनेसे फिर नियमितहोना कठिन होजाता है, और अनियमित होने से शरीर में अनेक प्रकार की पीड़ायें आनकर प्रवेश करती हैं। इस कारण प्रथम इस विषय पर दृष्टि रखने का विशेष प्रयोजन है।

रजोस्राव किसी के शरीर में तीन दिन, किसी के इसी प्रकार सात आठ दिन तक रहता है। रजस्वला अवस्था में यथा साध्य साफ रहना चाहिये। वस्त्रादिक में रक्त लगने से वस्त्रादिक नष्ट होजाते हैं और शरीर में दुर्गंधि हो जाती है, इस कारण दो तीन हाथ लम्बा और अर्द्ध हस्त की वरावर साफ वस्त्र योनि के ऊपर बांधकर रखना उचित है। यह वस्त्र नित्य कमसे कम दो वार परिवर्त्तन कर बांधना—चाहिये। जब तक रक्त गिरना बंद न हो, तवतक इसी प्रकार वस्त्र व्यवहार करने का प्रयोजन है। ऋतु होनेपर स्नान करना नहीं चाहिये। गरम रहना ही उचित है। पुष्टि कारक खाद्य वस्तु खाना—कर्त्तव्य है। जो सब द्रव्य शरीर को नरम करते हैं, ऐसा कोई द्रव्य भक्षण करना उचित नहीं है। मूली गूलर, वैंगुन, रामतुरई इत्यादि न खाना ही उचित है। और जिन सब आहारों से काम उत्तेजित हो, उनका भक्षण करना किसी प्रकार उचित नहीं। जिन कार्यों से काम वृत्ति उत्तेजित हो, वह कार्य नहीं करने चाहिये।

अंडा और मांसादि अति गरम द्रव्य हैं, इन सब को भोजन करने से इन्द्रिय उत्तेजित होती है, इस लिये इन सबका खाना उचित नहीं है। मत्स्य भी अतिशय इंद्रिय उत्तेजक है। सिंदूर, महावर भी इसी प्रकार है। ऋतु होनेपर इन सब का व्यवहार करना उचित नहीं है। ऋतु होनेपर पुरुषमात्र हीको स्त्रीके निकट से दूर

---

* किसी २ स्त्री को ऋतु महीने में दोबार होतेभी देखाजाता है।

रहना चाहिये। ऋतु काल में काम उत्तेजित होनेसे रक्तके अधिक गिरने की संभावना है, यहां तक कि अति स्राव वा अतिशय रक्तपात पीड़ा भी हो सकती है। इस कारण ऋतु काल में पुरुष का सहवास नहीं करना चाहिये। पुरुष के सङ्ग शयन करना भी उचित नहीं है, ऋतु काल में संगम से "बाधक" पीड़ा निश्चय ही होती है। ऋतु के प्रथम दिन से कमसे कम चार दिन तक किसी प्रकार भी पुरुष का सहवास और पुरुष का संग उचित नहीं है। शरीर को अनेक यत्न सहित रक्खे, तब शरीर स्वस्थ रहता है, तभी मनुष्य सुख पूर्वक स्वच्छन्द रह सकता है और तभी संतान संतति हृष्ट पुष्ट होती है।

जन्मप्रकरण ॥

जिस नियम से जगतकी श्रेष्ठ सृष्टिमें मनुष्य जाति का जन्म होता है वह नियम बहुतों को अवगत है, अपना जन्म किस प्रकार होता है वह हम बहुत मनुष्य जानते हैं, यह विषय नीचे संक्षेप से लिखते हैं, सब जानतेहैं कि स्त्री और पुरुष का वीर्य एक होनेसे संतान उत्पन्न होती है किन्तु वह महान् व्यापार किस प्रकार संघटित होता है, उसको चिकित्सक के अतिरिक्त कोई भी नहीं जानता। केवल यही सब विषय जानकर फिर हमारा कार्य शेष होगा, इसप्रकार नहीं है, इन्द्रिय सम्बन्धी पीड़ासे देशका नाश हुआ जाता है, जिस प्रकार उस पीड़ा की यंत्रणासे निरपराधिनी अबला गणों की रक्षाहो उसका उपाय करने भी करना होगा; जो अंग पीड़ित होताहै उस अंगकी गठन प्रणाली न जाननें से चिकित्सा करना सहज नहीं है इस कारण नीचे पुरुषाङ्ग और स्त्रियों की गठन प्रणाली हमारे सुविख्यात् फरासी चिकित्सक के— "डासी मोरोल्मीर" ग्रंथ से संक्षेपसे उद्धृत करके लिखते हैं। "मनुष्य का जन्म संपादन करने के लिये तीन प्रकार के यंत्र मनुष्य के शरीर में विद्यमान हैं। १ वीर्य निर्माणक यंत्र—२ वीर्य परिचालक यंत्र—३ और निक्षेपक यंत्रहै, प्रथम इन सब यंत्रों का वर्णन करके फिर यह

बतलावेंगे कि किसप्रकार मनुष्यका जन्म होताहै, पुरुषके दो अंडहैं यह दोनों एकथली में स्थापितहैं, इस थलीको कोष कहते हैं, वही वीर्य निर्माणक यंत्र है यहदोनों अंड अति कोमल पदार्थों के समूह हैं यदि इनको खोलकर लंबा किया जायतो यह हजार फुटसेभी अधिक लंबे होजांय—इस नलके भीतर छोटी २ थैलियें उत्पन्न होती हैं, वीर्य के भीतर एक छोटा २ पदार्थ होता है इसको अनुवीक्षण यंत्र द्वारा देख सकते हैं, यह गोल और दुमदार है, इसमें भ्रमण शक्ति और झुकने की शक्ति है, यह वीर्य के भीतर घूम घाम कर दौरा करता है, केवल शीतल जल देनें से मरजाता है । इसको हम लोग (शुक्र) कहते हैं, गर्भ स्थली में वह कितनी देर जीवित रहता है सो कह नहीं सकते ।—तो अनेक क्षण जो जीवित रहता है इस विषय में किसी प्रकार का संदेह नहीं है, पुरुष के अंग के भीतर लगा हुआ एक नल है, इस नलके प्रारम्भ में कितनी एक छोटी २ थैलियें हैं, वीर्य अंड कोष में उत्पन्न होकर घूमते हुए नलके द्वारा आनकर इन सब थैलियों में जमता रहता है, वह वीर्यका चलानेवाला यंत्र है यौवन काल (जवानी का समय) प्राप्त न होने पर किसी समय भी वीर्य उत्पन्न नहीं होता यह बात कोई न भूले ।

इन सब थैलियों के नीचे होकर मसाने का नल आनकर पुरुषांग नल के साथ मिला है, मसाने के नल के ठीक ऊपर एक कुछेक बड़ी थैली है, इस थैली के साथ रेतः धारक छोटी २ थैलियों का संयोग है । कामेच्छा तेज होने पर इस बड़ी थैली में पतले दूध कीसमान एकप्रकारका पदार्थ उत्पन्नहोताहै, और सहवासके समय में वीर्य घर्षण वशतः इसपदार्थ के साथ संयुक्त होकर जिस समय सहवास सम्पूर्ण होता है तिस समय पुरुषांग से उत्पन्न होकर अत्यन्त वेग से गिरता है, पुरुषांग रेतः निक्षेपक यंत्र है, एकबार देखो कि मनुष्य जन्म के लिये कितनी कलोंकी आवश्यकता होती है यह आश्चर्य का व्यापार क्या किसी समय छिपाने की सामग्री है ?

स्त्रियों के भी ठीक इसी प्रकार तीन यंत्र हैं, एक वीर्य निर्माणक, एक वीर्य परिचालक और एक वीर्य निक्षेपक यंत्र है। जिस स्थान में पुरुष का अंग प्रविष्ट होकर वीर्य निक्षेप करता है; स्त्रियों का भी वही वीर्य निक्षेपक यंत्र है। जिस नल के भीतर होकर वीर्य जाकर अंडे के संग मिलताहै उसको रेतः परिचालक यंत्रकहते हैं, और जिस स्थान में वीर्य प्रस्तुत होता है, वह रेत ःनिर्माणक यत्र कहा जाता है। स्त्रियों के गर्भस्थली का आकार बेर के आकार की समान है। वह स्वभाविक अवस्था सेही लंबा तीन चार ३। ४ इन्च और चौडा २॥ इंच यह मनुष्य की प्रथम वास भूमि है। इस गर्भस्थली के दोनों पार्श्वों में दो कोषहैं, इनकोषोंमें एकप्रकारका अंडाकार पदार्थ प्रस्तुत होता है इस को भी हम शुक्र कहते हैं। पुरुष का जिस प्रकार सहवास के अतिरिक्त वीर्य स्खलित नहीं होता स्त्रियों का इस प्रकार नहीं है।

जब स्त्रियों का यौवन आताहै तब प्रति मास में एक बार यह अंडा पककर बाहर निकलताहै। इसी व्यापार को लोग ऋतु कहते हैं। इस अंडस्थली के मुख में क्षुद्र घंटाकार दो नल हैं। ऋतु काल आने पर ईश्वरके आश्चर्य नियमानुसार यह दोनों अंडस्थलियों को चूमकर पकड लेते हैं। रक्त सहित अंडा इस नल में आनकर छोटे नल द्वारा होकर क्रम से नीचे योनि के नल के भीतर आता है। योनि के नल के शेष प्रान्त में गर्भस्थली का मुख है इस मुखका दरवाजा इतना छोटाहै कि सरसों के गांठे दाने के सिवाय इसके भीतर और कुछभी नहीं जासकता। जब इसप्रकार नलके भीतर होकर वीर्य ऊपर आता है जिस समय यदि पुरुष के वीर्य से मिश्रित होकर [illegible] चलनेवाले शक्तिवाले पदार्थ इसके संग मिल जायें तो वह तत्काल गर्भस्थली में प्रवेश करताहै, वैसेही वह मुख बंद होजाताहै वैसेही अंडस्थली का मुख बंद होजाता है; इसी प्रकार दस महीने में एक मनुष्यका जन्म होता है। इसलिये [illegible]

होनेंपर फिर ऋतु * नहीं होती इतना झगड़ा होनेसेही प्रत्येक सहवास में संतान नहीं होती है। यहभी जानना उचितहै योनिके नलकी बगलमें एक प्रकार का भीजाहुआ सूक्ष्म चर्म है, सहवास के समयमें इस चर्म से एक प्रकारके वर्ण विहीन गोलेपदार्थ का स्खलित होता है। जान पड़ता है कि साफ करना ही इसका उद्देश्य है। मनुष्यका जन्म प्रकरण यही है। शरीर भी यहीहै सम्पूर्ण अंगोंको अतिसावधान और अति यत्न सहित न रखनें पर जो पीड़ाहो तो इस में आश्चर्य क्या है।

ईश्वरकी असीम सामर्थ से इस प्रकार अश्चर्य भावसे मनुष्य का जन्मप्रकरण स्थिर हुआहै। मनुष्य जाति नष्ट न होजाय, इस लिये उसने सब प्राणीकी अपेक्षा मनुष्य के हृदय में काम वृत्ति अधिक तेज करीहै मनुष्य के ध्वंश के लिये अनेक उपायहैं असंख्य उपाय से मनुष्य मरते हैं, प्रति महूर्त ही मनुष्य मरसकता है इस प्रकारकी अवस्था में काम को इतना प्रबल न करनें से एक दिन मनुष्य जाति का लोप होजाता जो जो अंग ईश्वर नें इस कार्य में नियुक्त रक्खे हैं उनकी गठन प्रणाली ऊपर संक्षेप से लिखी गई है। किन्तु वह उस २ अंगमें उत्पन्न हुआ वह इकट्ठा न होनेंसे मनुष्य का जन्म नहीं होता। मनुष्य जातिका लोप न होजाय इस कारण ही मनुष्य के हृदय में स्त्री पुरुषके सहवास की इच्छा इतनी प्रबल है * प्रथम तो हम यही लिखेंगे कि स्वाभाविक सहवास किसको कहतेहैं। फिर किस अवस्था में सहवास करना कर्तव्य है, सहवासकी अधिकता और अल्पता से क्या हानि होती है ! इत्यादि विषय पीछे लिखेंगे।

---

* किन्तु अनेक समय गर्भ अवस्था में भी ऋतु होते देखाजाता है।

* डाक्टर [illegible] पुस्तक देखो।

* स्त्रियों की काम शक्ति पुरुषकी अपेक्षा बहुत कम है ऋतुके कई दिन पहले चार पांच दिनतक उनकी कामवृत्ति प्रबल रहतीहै, इसके पीछे मुख्यतरभी नहीं रहती, और बिना उत्तेजित करने की चेष्टा कियेहुए उत्तेजित नहीं होती ॥

सहवास—एक विख्यात अंग्रेजी डाक्टरने लिखा है कि "मनुष्य के हृदय में अन्य चिंता न रहने पर स्वभाव से ही सहवास की इच्छा आवेगी । आनेपर हृदय में एक प्रकार की मत्तता उत्पन्न होगी । दिमागमें जो बिजलीका तेज है, वही बिजली का तेज तारों में होकर पुरुष के अंग वा स्त्री के अंग में प्रवेश करके पुरुषके अंग को बृहत् (बड़ा) दृढ़ (मजबूत) और कठिन (सख्त) करताहै, स्त्री के अंगको स्फुटित ऊष्ण (गरम) और तेज करता है । चारों ओर का रुधिर आनकर उस स्थानमें जमता है। जब इसप्रकार की अवस्था होजाय तिसी समय यह समझना चाहिये कि यथार्थ इच्छा हुई है और संगम का उपयुक्त समय आया है । मनुष्य के जीवन का सुख दुख सहवास के ऊपर सम्पूर्ण निर्भर करता है । तुम्हारे शरीर और मनमें जो सब अभाव हैं । सो उनके मूलकारण तुम्हारे पिता माता हैं । इच्छा के समय में उनकी शारीरिक और मानसिक अवस्था के मेल से तुम गूंगे व काने पंगु व चिर रुग्न मूर्ख वाक्यशक्ति शून्य क्रोधित स्वभाव हिंसक, व उन्मत्त हुए हो । जब सहवास केही ऊपर मनुष्य जातिका सबकुछ निर्भर करता है तो इसको लज्जा का विषय और घृणा का विषय विचारना यह कितना अन्याय है सो कहा नहीं जाता । जिस के ऊपर तुम्हारे जीवनका सुख दुःख निर्भर करता है उस का विषय तुम भलीभांति क्यों नहीं जानना चाहते ।

उपयुक्त समय और अवस्था ॥

सहवासका उपयुक्त समय रात्रिकाल है रात्रि में समस्त वायु मण्डली से (नाईट्रोजेन) नामक एक प्रकार की वाष्प उठती रहती है, यह नाईट्रोजेन उत्तेजक और सहवास के लिये जिस बलकी आवश्यकता है वही बलदायक है । दिनमें यह वाष्प (भाफ) नहीं रहती । अतएव दिनमें सहवास बल हानिकारक है: बलकी हानिहोने से पीड़ाहोनेकी

* मनुष्य की जिन्दगी का सुख [illegible]

संभावनाहै = रात्रिकाल में भोजन के दोतीन घंटे पीछे शरीर जिस प्रकार विश्राममें और स्वस्थ अवस्था में रहता है ऐसा और किसी समय में नहींरहता । इसलिये सहवासके निमित्त यहसमयही उपयुक्त समयहै । सहवास समय के दोषसे संतान कुरूपहोती है, रोगीहोतीहै मानसिक शक्ति शून्य होती है, ऐसा कहने पर कोई हँसे नहीं मनुजी लिख गये हैं, सहवास का समय, काल, अवस्था, सब विशेषरूपसे विचार करनी उचित है । मनुजी मूर्ख नहीं थे । इस समय विलायत के डाक्टर लोग अमूल्य वाक्यसे उसी गूढ़ विचारकी पुष्टि पोषकता करते हैं । आजकल के सभी वैज्ञानिक इस बात को मानते हैं कि सहवास का समय काल, अवस्था और सहवास करने वालों की मानसिक और शारीरिक अवस्थानुसारही संतानका मन और शरीर निर्मित होता है । हमारे शास्त्रों में यह विषय बारंबार लिखा है स्वयं मनुने इस विषयको बहुत लिखा है । यह सब देखकर सहजही प्रतीत होता है कि हम यह सब विषय कितनी लज्जा और घृणाका विषय समझते हैं, आर्य ऋषिगण किसी समयभी ऐसा नहीं समझते थे । हमारे शास्त्र के मत से नीचे लिखे समय में संगम निषिद्ध है । ऋतु समय के अतिरिक्त अन्य समय में संगम एक बारभी निषिद्ध है । ऋतु के प्रथम दिन से षोडश दिन पर्यंत ऋतु का समय है । इसके पहले दूसरे, तीसरे, चौथे, ग्यारवें, और तेरहवें दिन में सहवास करना कर्त्तव्य नहीं है । और शेष दश दिन के बीच अयुग्म दिनमें भी सहवास करना उचित नहीं है । मूला मघा, अश्विनी नक्षत्र के पहले चरण और ज्येष्ठा, रेवती तथा अश्लेषा के शेष भागको गंड कहते हैं । गंड काल में सहवास सम्पूर्ण निषिद्ध है * इस प्रकार

÷ ऋतुः स्यात् षोडशाहानि सेवेतत्कामनम् ।

* मूलमघाश्विनीनामाद्यं ज्येष्ठा रेवत्यश्लेषाणां । अन्त्यं गण्डपदं स्यात्तत्त्वा षोडशाहे च्छी मैथुन । ... अन्त्यं ... आद्यं ... मूलं । गण्डदण्ड पर्यंतं सर्वकर्मसु वर्जितम् ॥

और भी अनेक नक्षत्रों के उदय तथा अंतकाल इत्यादिका विचार करके संगम विहित है, वारंवार वह यही बात लिख गये हैं । हम जिस प्रकार संगम को घृणा और अग्राह्य करते हैं, वह इस प्रकार नहीं करते थे, उन्होंने इसको एक भारी कार्य मनमें समझा है, और समझतेही थे तो वह इस विषय को इतना ऊपर लिख गये हैं । वह सब विषय अग्राह्य करना क्या हम को उचित है ? इन सब बातों का विचार न करना क्या हमको उचितहै ? किन्तु हम इसको भी स्वीकार करते हैं कि उत्तम दिन, तिथि, नक्षत्र देखकर सहवास करना किसी सेभी संभव नहीं है । यह संभव नहीं होसकता किन्तु रात्रि के अतिरिक्त दिनमें सहवास न करना सभी अपने आधीन है, प्रभातकाल में सहवास न करना अपनेही आधीन है, पीड़ित शरीर से थकेहुए शरीर से अति परिश्रम व भोजन के उपरांत सहवास न करना अपनेही आधीन है मनमें दुःख, राग, हिंसा द्वेष, विद्वेषादि रहने की अवस्था में सहवास न करना अपनेही आधीन है इच्छा न होनेपर सहवास न करना अपनेही आधीन है, कोई क्या जानता है कि हमारे देश की स्त्रियें अनिच्छा रहने पर सहवास करके कितनी पीड़ा भोगती हैं ! मुख खोलकर नहीं कह सकती, पीड़ित शरीर से, क्लेश के प्रवाह में डूबते २ सहवास के लिये पुरुष के हाथमें आत्म समर्पण करती हैं । हे पुरुष ! तुम क्या किसी समय एक बार वा एक मुहूर्तके लियेभी विचारते हो कि तुम जिस समय जिसके संग सहवास करने की इच्छा करते हो, वह उस समय सहवास करने की इच्छा करती है वा नहीं, वह सहवासकी उपयुक्त अवस्था है वा नहीं ? हाय यदि ऐसा करते तो प्रतिदिन तुमको इतना क्लेश भोग करना नहीं पड़ता । तुमपढ़े लिखे हो, हृदय से हृदय में लिखकर देखलो कि संतान के जीवन का सम्पूर्ण शारीरिक और मानसिक व्यापार तुम्हारे सहवास के ऊपर निर्भर किया है । संतानकी मानसिक शक्ति तुम्हारे ही

तुम्हाराही दोष है, संतान तामसी हिंसक और पापाशय हो सो। तुम्हाराही दोष है, इस बातको मन में बिचारकर सहवास करनेको अग्रसर होना उचित है और इसके साथही साथ यहभी मन में विचारना चाहिये कि तुम्हारे शरीर का स्वास्थ्य भी इसके ऊपर सम्पूर्ण निर्भर है ॥

बाइबिल पुस्तक में लिखा है कि " माता पिता के पाप के कारण निष्पाप सन्तान कष्ट पातीहै ,, इसका क्या अर्थ ! इसका अर्थ और कुछ नहीं है, पिता माता की शारीरिक हीनताही इसका कारण है ऊपर जो लिखाहै उसको पढ़नेसे इसका अर्थ भलीप्रकार ज्ञातहोगा सहवासकी अल्पता—ईश्वर के राज्य में जब किसीप्रकारसे अनियम नहीं होता तब मनुष्य सृष्टि जिस प्रकरण में होती है उसका अनियम होना किस प्रकार सम्भव है ! यदि बलात्कार वह नियम भंग करोगे तो तत्काल उस पाप का दंड पाओगे। यदि काम वृत्ति को एकही काल में निर्मूल करना चाहो तो पीड़ित होजाओगे। क्रमर से दिमाग में दुर्वलता उत्पन्न होगी विचारशक्ति कम होगी। मानसिक शक्ति सब दुर्बल होजायगी अगणित व्याधि आनकर तुमको घेर लेंगी कदाचित् स्वप्नदोषकी पीड़ा से क्षयको प्राप्त होकर तुम को अकाल मेंही कालके कराल गाल में गिरना हो ? इस लिये सब को अनुरोध करते हैं कि कोई इच्छा को एक बारही नष्ट करने का मनमें संकल्प न करै शरीरको नष्ट करना, आत्महत्या करना यदि पुण्य होता है तो यहभी पुण्य है अन्यथा नहीं ? काम वृत्ति को न नष्ट करै, न प्रबल करै, दमन करके अपने आधीन रखना चाहिये जिसने अपनी सम्पूर्ण इन्द्रियें अपने आधीन कर रक्खी हैं वही जितेन्द्रिय हैं ।

हमने जो यह कहा कि इन्द्रियोंको चलाना चाहिये इससे कोई यह न समझै कि हम उसी उपाय से उसी कार्य के पूर्ण करने की सबको परामर्श देते हैं। जिस को सामर्थ है उस को यौवन के प्रारंभ मेंही

विवाह करना चाहिये। विवाहित पुरुष को अविश्वासी और कपटी होकर अन्य स्त्री गमन तो दूररहा अन्य स्त्री की चिंता करना जिस प्रकार महा पाप और अन्याय कार्य है * विवाहितास्त्री को भी अन्य पुरुषकी चिन्ताकरना वैसाही महापाप और अन्याय कार्यहै। कारण कि इस से केवल स्त्री पुरुषकीही हानि नहीं वरन उनके पार्श्वस्थ सब लोगों की शारीरिक और मानसिक विषम हानि होती है। किस प्रकार होतीहै वह सब जानते हैं अब इस स्थल में प्रमाण करने की आवश्यकता नहींहै, तौभी बहुत कह सकतेहैं कि जिसकी विवाह के योग्य अवस्था नहीं है वह क्या करे ? उनको अवश्य दमन करना उचित है। जब कि किसी कार्य के करने से भी हानि होतीहै और न करनेसे भी हानिहोतीहै, तो नितान्त उपाय न रहने पर जिस पंथ के अवलम्बन करने से हानि सूक्ष्म हो, वही पंथ अवलम्बन करना चाहिये इन्द्रियों को दमन करके रखने से विशेष हानि है, परन्तु यह कहकर उस हानि से रक्षा पाने के लिये और प्रकार शारीरिक और मानसिक सर्व नाश करना उचित नहीं है।

अविवाहित स्त्री पुरुष जिन उपायों से इन्द्रिय तृप्ति साधन करते हैं वह सभी अनुचित हैं। मानसिक और शारीरिक सर्वनाश का मूल है। जिनकी विवाह करने की अवस्था नहीं है उनको इन्द्रिय दमन करना चाहिये। जो विधवा हैं उनको भी इन्द्रिय दमनकरना उचित है। इन्द्रिय को अस्वाभाविक भाव से, नीच भाव से और अन्याय रीति से आश्रय देने और परिचालित करने से अर्थात् चला ने से सामाजिक, मानसिक, शारीरिक, अपनी पराई और सम्पूर्ण

---

* जिस कार्य से अपनी और दूसरोंकी शारीरिक और मानसिक हानि होती है उसी कार्य को हम [illegible] कहते हैं और केवल अन्याय कार्यही [illegible] है।

† [illegible] साहब का [illegible] देखो।

‡ [illegible]

पृथ्वी की जो हानि होती है सो ज्ञात है, इसका अत्र प्रमाण करना नहीं होगा। दमन करके रखने से केवल तुम्हारे शरीर की कुछेक हानि होगी, जब दमन करने से इतनी अल्प हानिहै तौ दमन करना ही ठीक है यदि सर्वदा किसी कार्यमें ही रहाजाय, यदि इन्द्रिय सम्बन्धी कोई पुस्तक न पढ़ीजाय, यदि प्रति दिन रीति के अनुसार कसरत कीजाय, संक्षेप से यदि एक मुहूर्त भी मनको शून्य न रक्खा जाय तो इन्द्रिय सरलता पूर्वकही दमन रहसकतीहै, और इसप्रकार दमन करने से हानि भी बहुत थोड़ी होगी ! स्त्रियों की इच्छा पुरुष की अपेक्षा बहुत कम है । पुरुषों की जिस प्रकार सर्वदा सब समय में मन शून्य रहनेपर भी इन्द्रिय उत्तेजित होती है, स्त्रियों की इस भांति नहीं है । ऋतु समयके अतिरिक्त उनकी इन्द्रिय अपने आप उत्तेजित नहीं होती। चेष्टा करने से इस विषय की चिन्ता व पढ़ने से और पुरुष के संग मिलने से अवश्यही होती है। जिस समय ऋतु के पहले और पीछे उनकी इन्द्रिय तेज होती है तो एक कार्य में लगे रहने से इन्द्रिय भलीभांति दमन रहती हैं। इस स्थल में एक बारकह देते हैं कि विवाहिता या विधवा स्त्रियों को पुरुष के संग एक स्थान में संमिलित होकर बहुत काल तक रहना उचित नहीं है।

सहवासकी अधिकता—सहवास के सम्बन्धमें कोई नियत नियम करना संभव नहीं है। अपने २ शरीर में बल देखकर सहवास करना चाहिये विख्यात डाक्टर लोग लिख गये हैं कि किसी को भी सप्ताह में दोबार से अधिक सहवास करना कर्तव्य नहीं है। बहुतेक अपने बलको न देखकर सहवास की अधिकता कर देते हैं, उनके लिये लिखते हैं कि वे जिस समय देखें कि मस्तक हलका बोध होता है, मस्तक का घूमना प्रारम्भ हुआ है, नेत्रों में जलन होती है हृदय में एक प्रकार की थोड़ी २ वेदना बोध होती है तो उसी समय सहवास बंद करना चाहिये। जब तक शरीर स्वाभाविक अवस्था

को प्राप्त नहो तब तक और सहवास किसी प्रकार न करें और इस विषय को मन में भी स्थान न दे।

सहवास बंद रखनेसे जितनी पीड़ा होती है सहवासकी अधिकता से उस की अपेक्षा शतगुणी अधिक पीड़ा होती है, सहवासकी अधिकता से जो विशेष हानि होती है उसको अब लिखने की आवश्यकता नहीं है तुम यदि एक पहाड़ उठाने की चेष्टा करो तो अवश्यही तुम्हारी मृत्यु होगी क्योंकि तुम में जो सामर्थ है, उसको तुम सब करडालोगे। इसी प्रकार यदि तुम सामर्थ से बाहर इन्द्रिय को चलाओगे तो तुम्हारी मृत्यु का होना संभव है। तुम्हारा दिमाग दुर्बल होजायगा, शरीर का तेज क्षय का प्राप्त होगा अंग प्रत्यंग का नष्ट प्राय होजायगा, इस प्रकार की अवस्था होनेपर जो पीड़ा होगी वह कह नहीं सकते। और यदि इसअवस्थामें संतानादि हुई तो वह किसप्रकारकी होगी उसकोभी कहने की अब आवश्यकता नहीं है। इन्द्रिय दमन रखनाही कर्तव्य है जिन के न चलाने से अत्यन्त हानि होसकती है केवल उनकाही चलना उचित है इसके ऊपर कुछभी विवाद करना उचित नहीं है। हे अबला गण! तुम कब समझोगी कि तुम अपने हृदय की इच्छा और प्राणों के कष्ट को छिपा रखने से अपने देश का क्यों सर्व नाश करती हो, अपने हाथ में क्यों तेज कुल्हाड़ी मारलीहो प्यारी संतान को किस मूर्ति से इस जगत् में लाती हो, इच्छा न होनेपरभी सहवास की अधिकता करके अपने शरीर को नष्ट करती हो, क्षीण प्राण, दुर्बल और कुरूप संतान प्रसव करती हो, मनुष्य जाति को किस मृत्यु के मुख में लिये जाती हो। जिस सहवास के ऊपर मनुष्य जातिका अस्तित्व निर्भर है उसी सहवास को तुम लज्जा का विषय करके उस से छिप जाती हो।

सहवासप्रकार—अनेक प्रकारसे सहवास मनुष्य समाजमें प्रचलित है। इन्द्रिय व्यापार के सम्बन्ध में इच्छा कालानुसार दर्शित करना

व मत्त रखना यह कितना मानसिक और शारीरिक हानि कारक है सो कह नहीं सकते। इंद्रिय सवन्धीय अति आश्चर्य विषय सब जान लेना निर्लज्जता नहीं है, इंद्रियके व्यापार में मनको बहुत काल तक मत्त रखनाही निर्लज्जताहै। यद्यपि तुम निर्जन में इस प्रकार करतेहो किन्तु उससे भी तुम्हारी मानसिक और शारीरिक अवनति होती है मनुने कहा है "स्नान पूर्वक वस्त्र त्याग शुद्ध होकर इष्ट मंत्र जपते २ गमन करै" * इसका अर्थ और कुछ नहीं है; जिस प्रकार उदर को आहार न देने से काम नहीं चलता, इसी लिये उदरको आहार दिया जाता है; वैसेही इंद्रियों के बिलकुल न चलाने से भी काम नहीं चलता। इसमें आशक्ति बिंदुमात्र भी होनी उचित नहीं है। आशक्ति न होने से इस कार्य के करने की इच्छा नहीं होगी; जितनी शीघ्र यह कार्य शेष होजाय, उसके ही करने की अत्यन्त चेष्टा करनी चाहिये। यदि बहुत काल तक अनेक भाव से इस कार्य के करने में नियुक्त रहोगे, तो तुम्हारा मन सम्यक प्रकार से मत्त होजायगा। इस अवस्था में ही यदि तुम्हारी संतान का जन्म हुआ, तो वह भयानक और कामी होगी, यहांतक कि उसके अंग प्रत्यंग में भी हीनता होसकती है। तुमने जिसको सामान्य कार्य मनमें समझा है वह सामान्य कार्य नहीं है; उसका फल दूरतक व्यापने वाला है, विख्यात् फरासी डाक्टर लालि मण्ड ने लिखा है "मनुष्य क्या किसी समय नहीं जानता कि स्त्री पुरुषका सहवास एक कैसा भारी विषय है? केवल प्राचीन आर्य ही इस को जानते थे, तभी वह यह सब विषय शास्त्र में लिख गये हैं"। मनुने अपनी संहिता में जो विषय बारम्बार सर्व देव पूजा और सर्व सुकार्य करना जिस प्रकार मनुष्य का प्रयोजन कहा है; सहवास को भी इसी प्रकार प्रयोजन कह गये हैं, वही मनुकी संतान इस समय उनकानाम किसी के मुख से सुनने पर उसको मारने के लिये दौड़ती है।

* मनुसंहिता देखो।

सहवास अनेक प्रकार से वा इच्छापूर्वक बहुत देर करने से जो अपनी संतान के शरीर और मनका हानिकारक है वह जो ऊपर लिखागया है उससे स्पष्ट विदित होगा सहवास स्वाभाविक अवस्था में तीन चार मिनट से अधिकस्थायी नहीं होता। हृदयको हृदय से लगाकर सहवास करनाही स्वभाविक है। दूसरी प्रकार सहवास की युक्ति संगत नहीं है। सहवास हँसकर उड़ादेनेका कार्य नहीं है, इसके ऊपर तुम्हारा और तुम्हारी संतान संतति वरन समस्त मनुष्य जातिका सुख दुख जड़ित हुआहै। यदि संतान कुरूप, चिररुग्न, मानसिकशक्ति विहीन, और मूर्ख होगी, तो क्या तुम्हारे हृदय में अत्यन्त कष्ट नहीं होगा! कौन संतान को इस प्रकार होने देगा? भारत वर्ष के आर्य ऋषि कहगये हैं, और इस समय यूरोप के विख्यात् वैज्ञानिक भी कहते हैं कि सहवास के ऊपर संतान का रूप और गुण दोनों पिता के हाथ में हैं। क्या यह समझादेने पर भी नहीं समझोगे?।

सहवासकी तुल्यता—स्त्री और पुरुषका ठीक एक समय में पृथक् होना किसी ने नहीं देखा है, और न देखने से ही पीड़ा की यंत्रणा भोग करते रहते हैं। यदि स्त्री पुरुष दोनोंका बल समानहोतो ठीक एक समय में दोनों पृथक होसकते हैं और होनेपर समझा जायगा कि यथार्थ स्वभाविक और पूर्ण सहवास हुआ। दोनों का बल सामान नहीं होने से किसी समय भी संतान नहीं होती है।

यह सहवास सम्बन्धीय असमंजसता हमारा सर्वनाश करती है, दिन २ हमें क्षय करे डालती है, यदि सौ वर्ष तक जीवित रहते तो इस समय चालीस वर्ष तकही जीवित रहेंगे। देश की आधी स्त्रियें जो "हिष्टिरिया" पीड़ा से ग्रस्त हैं उसका यही कारण है। यदि स्त्री पुरुषका बल असामान्य हो (विवाह होने के पहले ही दोनों का बल समान है कि नहीं इस विषय में विशेष दृष्टि रखनी चाहिये) तब आप उनके दोनों का बल समान करने की चेष्टा

करनी होगी यदि और किसी के संग एक वारही शयन बंद करें, यदि क्रमानुसार तीन महीने प्रति दिन स्त्री पुरुष शयन करें, ऐसा होने से दोनों का बल अपने आप समान होजायगा । पृथ्वी में कोई द्रव्य भी असमान अवस्था में नहीं रहसकता । यदि एक मेघ में अधिक बिजली और एक में कम बिजली हो तो उसी में जाती रहती है, जब तक दोनों मेघों में बिजली समान नहीं होती तब तक इसी प्रकार होता है । मनुष्य के शरीर में भी बिजली ही मनुष्य का तेज और बल है, एक दुर्बल मनुष्य यदि क्रमानुसार बहुत दिन तक बलवान मनुष्य के निकट शयन करे तो वह बलवान मनुष्य क्रम से दुर्बल होगा और यह दुर्बल मनुष्य क्रमसे बलवान होजायगा । इसप्रकार क्रमसे होनेपर दोनों का तेज और बल समान होगा । स्त्री पुरुष का समान बल और तेज होनेके लिये स्वभाव के ऊपर निर्भर करके रहने से समय लगेगा और एक जन वृथा दुर्बल होगा, अतएव जो दुर्बल है उसका शरीर जिससे पुष्ट हो वैसाही आहार और कार्य करना उचित है ।

ऐसा करने से यह असमंजसता अधिक दिनतक नहीं रहेगी स्वभाव सेही स्त्री के पृथक होने में समय का अधिक लगना देखाजाता है । इसका यही कारण है, एक कारण तो स्त्री का पुरुष की अपेक्षा तेजवती होना और दूसरा स्त्री का सब समय में उत्तेजित न होनाहै * से उन्मत्त नहीं हो, तो उसको सहवास की इच्छा भी नहीं होती इसलिये शीघ्रही पृथक होता है । स्त्री को कदाचित् उस समय वह अच्छा न लगे इसी कारण उस की इंद्रिय उत्तेजितहोने के पहले ही पुरुष का सहवास शेष होता है । यह असामान भाव सहज मेंही दूर कियाजाय ।

कोई२ कहते हैं " यह किस प्रकार जानें ,, स्तन का घेरा दृढ होने से ही जाना जासक्ता है कि स्त्रियों की इन्द्रिय इच्छा तेज हुई

---

* डाक्टर फाउलर की शादी की बाबत हिदायत देखो ॥

है* और यदि स्त्री का तेज अधिकहो तब पुरुषका तेज भी जिससे अधिक हो इसलिये उसको वैसाही आहार और कार्य करना होगा। दोनोंका तेज और बल न्यूनाधिक होनेपर चाहें सहवास न भी करो केवल एक संग शयन करने से ही एक जन दुर्बल और क्षीण होजायगा ॥

सहवास का पीछा—सहवास के पीछे एक प्रकार का आलस्य बोध होता है। जबतक यह आलस्य रहे, तबतक, स्थिर होकर रहना चाहिये, जब वह आलस्य जाय तो तत्काल उठकर शीतल व साफ जल से अंग प्रत्यङ्ग को धोना उचित है।

ऋतुकालही सन्तान उत्पादन करने का समय है यदि ऋतु के ५। ७ दिन पहले १०। १२ दिन पीछे तक सहवास न कियाजाय तो सन्तान होनेकी सम्भावना नहीं है। इससमय हम दिखातेहैं कि हमारे ऋषिगण और यहां के वैज्ञानिकों का यही मतहै कि अच्छा समय अच्छा नक्षत्र स्वस्थ शरीर और प्रफुल्ल मन न रहनेपर संतान उत्पादन करने से सन्तान कुरूप रोगी, दुर्बल और बुद्धिहीनहोती है, सहवास करनेपरभी जिससे सन्तान नहीं होती उसका जानना सब को आवश्यकहै। इसके अतिरिक्त देशकी दरिद्रता बढतीहै, बहुतेक अपनापालन पोषणकरनेमें असमर्थ हैं इस अवस्थामें उनका संतानो[त्]पादन करना एकप्रकार पापके अतिरिक्त और कुछभी नहींहै। प्रति [व]र्ष सन्तानहोने से स्त्री दुर्बलहोजाती है, इसप्रकारकी अवस्था में [स]न्तान का होना ठीक नहीं है। इसकारण सहवासका सुख भोगकर [भी] [illegible] लिये सन्तानका होना बंदहोजाय। यह सब स्त्रियों को जानना [च]ाहिये इन सब कारणों सेही ऊपर यह विषय कुछ थोड़ासा लिखा [गय]ा है ॥

स्वास्थ्य रक्षा ॥

[illegible] जबतक शरीर और मनका बल तुम्हारी रक्षा करेगी। परन्तु

जिस दिन से तुम को ऋतु आरम्भ हुई उसी दिनसे तुम्हारे शरीर और मनका समस्तभार तुम्हारे ऊपर पडगया। अपने शरीर और मन को स्वस्थ रखना अपनी सन्तान संततिको स्वरूपवान (सबल) स्वस्थ और सुतीक्षण बुद्धिकर के उत्पन्नकरना और अपनेस्वामीका मन और शरीर स्वस्थावस्था में रखना यह सभी गुरुतर कार्य उसी दिनसे तुम्हारे ऊपर पडगये। ऊपर दिखायाहै ऋतुसम्बन्धीय और इन्द्रिय सम्बन्धीय व्यापार में शरीर को किस प्रकार रखना चाहिये ? प्रथम यही सब बात लिखी गई है उसका कारण यह है कि स्त्री का स्वास्थ सहवास के ऊपर विशेष निर्भर करता है। पहलेही यह सब बात लिखी गई है उसका कारण संतानका भविष्यत जीवन सम्पूर्ण सहवास के * ऊपर निर्भरहै प्रथमही यह सबलिखा है उसका कारण शारीरिक मानसिक सामाजिक सम्पूर्ण सुख स्वच्छन्दता सहवास के साथ और मनुष्य की इन्द्रिय के साथ मिला रहता है। कामेन्द्रिय से ही मनुष्य का जन्म है अतएव वही स्वाभाविक न रखसकने से अन्य किसी प्रकार से भी स्वास्थ रक्षाका उपाय नहीं और किसीप्रकार से भी मनुष्य के जीवन को दुःख शून्य करने की सम्भावना नहीं, इसको एक प्रकार हमने मानही लिया है, और विख्यात वैज्ञानिक लोग भी इस बात को स्वीकार करगये हैं। यदि भली भांति यह सब लिखा जाय यदि कामेन्द्रिय को बुरे व्यवहार और अन्याय के चलाने में मनुष्य जाति की शारीरिक मानसिक और सामाजिक कितनी हानि होती है, लिखकर प्रमाण कियाजाय तो ग्रन्थ बहुत बढजायगा। जो कहाजाता है, वही उद्देश्य सिद्ध होनेके लिये बहुत है। यदि मनुष्य जाति कामेन्द्रियकी कार्य प्रणाली भली प्रकार साधन करसे तो मनुष्य कभी क्षीणदुर्बल और स्थूल बुद्धि नहो। इस समय स्वास्थ रक्षा का नियम संक्षेप से कहे जांयगे । "यह

* होमयो पैथिक के प्रकट कर्ता डाक्टर हानिमान् इसको प्रकट करगये

मानसिक अवनति हुई ,, यह वह अवनतिको प्राप्तहुआ इसप्रकारकी बात बहुतों के मुखसे सुनाई देती है * परन्तु “ यह गरी उसका शरीर क्षीणहुआ,, यहबात कोईभी इसप्रकार व्यग्रहोकर नहीं कहता ?

स्वास्थ्यरक्षामें नीचे लिखे हुए कई एक कार्यों के ऊपर दृष्टि रखना सबकोही उचित है, यथा शयन, भोजन, स्नान, पान, परिश्रम, वेश और वासस्थान । अमरीका के विख्यात् डाक्टर गार्डी ने कहा है “ जिस समय किसी प्राणी के समस्त अंग प्रत्यंग और सब इन्द्रियें सुस्थावस्था में रहकर अपनार कार्य भली प्रकार से करती हैं तभी उनकी उस अवस्था को स्वास्थ्य * कहते हैं ,, । हमारे शास्त्र में भी स्वास्थ का वर्णन है । वायु, पित्त, कफ, के विकृत होनेसे रोग होता है “ वायु, पित्त, कफ ही स्वाभाविक रहने से स्वास्थ होता है ,, स्वास्थ शून्य होकर जीवित रहने से अस्वास्थ करके सन्तान उत्पन्न करना जो महापाप है उसका कहनाही वृथा है । इस प्रकार की अवस्था में बचे रहने की अपेक्षा मृत्यु श्रेष्ठ है । इस समय इस स्वास्थ रक्षा के लिये यथा २ करना उचित है । वह ऊपर कुछ२ लिखा गया है । जो लिखा गया है उसके अतिरिक्त और भी कितनी एक बातोंपर दृष्टि रखना कर्तव्य है । वही इस समय लिखते हैं ।

वासस्थान—स्वास्थ्यरक्षा करनी होतो जिस स्थान में वासकरे वह स्थान स्वास्थ्यमें हानिकारक है वा नहीं यह पहलेही देखना उचित है । जिस स्थान में वास करना हो उसकी वायु जिस में सर्दीपनहो दुर्गन्ध मय नहो, बहुत उष्ण अर्थात् गरम नहो और किसी प्रकार विषैली नहो, इस विषय की विशेष चेष्टा

करनी चाहिये गृह के समीप, नीम, बेल, तुलसी और कुछेक फूलों के वृक्ष रहने से वायु अच्छी अवस्था में रहती है जिस गृहमें वास करना हो वह गृह जिससे सूखाहो, साफहो और दुर्गन्धमय नहो, ऐसा करना चाहिये वासस्थान के भीतर जिससे वहुत प्रकाश आसके और भलीभांति वायु वह न करसके इस प्रकार के दरवाजे और खिड़कियें बनानी उचित है । लिखाजाने परभी बहुत लिखना होगा इसलिये संक्षेप से लिखते हैं ॥

जिस स्थानमें वास करने से यथासंभव स्वास्थकी हानिहोसकतीहै वह स्थान तत्काल परित्याग करना उचित है ।

वेश—वेशके ऊपर भी मनुष्यका स्वास्थ बहुत निर्भर करताहै । जिससे सब शरीर में आवश्यकतानुसार प्रकाश और वायु प्रवेशकर सके, इसप्रकारके वस्त्र धारणकरने चाहिये देशकी अवस्था देखकर वस्त्र व्यवहार करनेका प्रयोजनहै शीत प्रधान देशमें जिससे शरीरमें शीत प्रवेश न करसके, वैसेही गरम वस्त्रका पहरना उचित है, ग्रीष्म प्रधान देशमें जिससे अधिक गरमी शरीरमें प्रवेश न करने पावे, इसी प्रकार हिम वस्त्र पहरना चाहिये । हमारा देश अत्यन्त उष्ण प्रधानहै, इस देशमें सफद कार्पास व ऊनवस्त्रव्यवहार करनेका प्रयोजन है । कारण कि सफेद रंगमें अधिक ऊष्णता प्रवेश नहीं कर सकती । शरीरके जिन स्थानोंमें " शारीरिक—ताडित, तेज ,, * अधिकतासे विद्यमान है उन स्थानों को सफद वस्त्रसे ढककर रखना उचित है हम पहलेही लिखआये हैं कि पृथ्वी में कोई पदार्थ भी असमान अवस्था में नहीं रह सकता दो असमानद्रव्य निकटस्थ होनें पर तत्काल दोनों समान होजाते हैं । * मनुष्यके जो शरीरमें ताडित तेजहै वह और पदार्थ में भी है, इस लिये जिन स्थानों में यह तेज रहता है, यदि वह स्थान ढककर न रखेजांय तो इसतेज का कि-

---

× डाक्टर टकूर यह बात बार २ कहगये हैं ॥

* कोई आसर्यो कुदरत मानी (नवरा स्टुन्ड)

तनाही अंश निकट के अत्यन्त जगय किसी पदार्थमें जासकता है जिससे शरीर दुर्बल और दिमाग का क्षीण होना संभव है । परम कारुणिक परम पिता इस विषय की रक्षाकी व्यवस्था करगये हैं । उन्होंने यहसब स्थान बालोंकेद्वारा ढकदिये हैं । किन्तु मनुष्य तो ठीक स्वाभाविक अवस्थामें रहता नहीं है इस लिये वस्त्रोंसे यह सब ढककर रखने चाहिये ॥

जिसके पहनने से किसीअंग प्रत्यंग वा उसका कार्य स्वाधीन भाव और सरल भावसे सम्पन्न न होसके इस प्रकारके वेशका किसी समय भी व्यवहार करना कर्तव्य नहीं है और कमर कसकरभी वस्त्रपहरना उचित नहीं है ॥ हार्पोर्स मैगजीन नामक विलायती मासिक पत्रिकाके कोई चिकित्सक इसप्रकार कसनेसे स्वास्थ्य की कितनी हानि होती है उसको स्पष्ट प्रमाण करगये हैं, प्रमाण की अब आवश्यकतानहीं है जिसको किंचित मात्रभी विचार करता है वह इसको स्पष्ट जानसकता है भीगा, मैला, दुर्गन्धयुक्त, पसीने में भीगाहुआ कपड़ा आदि व्यवहार करने से जो स्वास्थ्य की विशेष हानि होती है उसके लिखने की आवश्यकता नहीं है । एकबार जो कपड़े एक मनुष्यने पहरलिये हों दूसरे को और किसी समय भी वह कपड़े पहरने उचित नहीं हैं । पहले हमारे देश में रात्रिके वस्त्र प्रातःक्रिया, भोजन, मलत्याग, और स्नान के लिये मनुष्य पृथक् पृथक् वस्त्र व्यवहार करते थे अब यह अति सुन्दर प्रथा क्रमसे उठी जाती है, इस प्रकार भिन्न २ कार्य के लिये भिन्न २ वस्त्र व्यवहार करना स्वास्थ्य के पक्ष में कितना अच्छा है सो कहनहीं सकते अधिक दृष्टान्त देना नहीं चाहते केवल इतनाही कहते हैं कि जिन वस्त्रोंको पहरकर तुम मलत्याग करते हो उन कपड़ों में क्या कुछेक दुर्गन्ध न होगी ? यदि हुई तो वह दुर्गन्ध तुम्हारी नासिका में जाकर क्या तुम्हारे स्वास्थ्य की विशेष हानि न करेगी ? इसप्रकार होनेसे स्वास्थ्य कैसा रहता कहनाही क्या है !

जब कि सब अंग ढककर रखते हो तो पैरोंको भी ढककर रखना उचित है कारण कि मृत्तिका सदाही शीतल है, इस शीतल मृत्तिका में सदा पैर रहने से यह स्थान वस्त्र आच्छादित शरीरसे अनेकांश शीतल होजाता है और शीतल होतेही इस स्थानका रक्त ऊपर उठता रहता है * इसप्रकार होनेसे जो पीड़ा होती आश्चर्य ही क्या है ? या तो समस्त अंग बनमानस की समान नंगे रक्खै और यदि ढके तो शरीर के सब अंग भली प्रकार से ढके। इन्हीं सब कारणों से स्त्रियों को पादुका पहरने का अनुरोध करते हैं। लोकाचार और देशाचार को आग्रह करके स्वास्थ रक्षा सब प्रकार से करनी चाहिये। स्त्रियों का वेश सभी जाति में दोष पूर्ण है स्त्रियों के शरीर का निम्नांश अधिकतर उघड़ा रहता है । यहभी स्त्रियों का बाधक है प्रदर इत्यादि की पीड़ा होनें का कुछेक कारण है × जो कहा गया, वेशके सम्बन्ध में यही बहुत है

शयन — निद्राभी मनुष्यों में एक अति आवश्यक कार्य है। निद्राके अनियमसे जो कितनीही पीड़ा होती हैं, वह कह नहीं सकते प्रतिदिन किसी को भी छः घंटे से कम सोना उचित नहीं है ईश्वर के राज्य में सबही क्रमानुसार रखना होगा। बहुत शयन करने से भी स्वास्थ की हानि होती है और बहुतथोड़ा सोने से भी हानि होती है इस कारण छः घँटे का सोना यही नियम सब को कर्त्तव्य है। शयन करने के लिये शय्या का होना आवश्यक है शय्याका अत्यन्त कोमल वा अत्यन्त कठिन होना उचित नहीं है। कोमल

---

* एक गिलास बरफ के जल में हाथ डालदो तो देखोगे कि हाथ में अब रक्त नहीं है समस्त रक्त ऊपर को चला गया इस से प्रमाण होता है कि शरीर के किसी अंग में अधिक शीतलता के लगने से इस स्थानका रक्त अन्य स्थान में जाता है।

× पेटमें कब्ज पैदाहोजाता है, गर्भस्थली में खून जमजाता है और जिस के कारण मासिक धर्म के समय कष्टहोता है या ल्यूकोरिया इत्यादि व्याधि होजाती है—डाक्टर हर्डी साहबकी यह राय लिबासके बारे में देखिये ॥

शय्यापर शरीर का चर्म शीतल होजाता है, और अत्यन्त कठिन शय्यापर भी शयन करने से सब रुवों के छिद्र बंद होजाने की संभावना है, किसी समय भी मैली शय्यापर शयन करना उचित नहीं है, कमसे कम सप्ताह में एक बार बिछौनें की चादर जलसे धोनी चाहिये, और तकिये को धूप देना उचित है। शयन के कारण गरदन में वेदना होनेसे हमारी स्त्रियें तकिये को धूप देती हैं। बहुत से कहेंगे कि इसका कोई अर्थ नहीं है इसके द्वारा किसी फल का होना दिखाई नहीं देता। विख्यात विज्ञान के जानने वाले डाक्टर बरडी ने कहा है वार २ रात्रिकाल के समय गरदन में वेदना होती है रक्त का अधिकता से होनाही इसका कारण है। यदि किसी प्रकार से इस स्थानमें धीरे २ ताप लगाया जाय, तो वेदना आरोग्यहो × तकिये को धूप देने से तकिया उत्तप्त होता है। रात्रि में इस तकिये को मस्तक के नीचे रखकर शयन करनेसे यह ताप अपने आपही गरदन में प्रवेश करेगा — क्योंकि तकिया गरदन से भी उष्णतर है। और उसी उत्तापसे रक्त गलकर पहलीअवस्था प्राप्त होगी और वेदनाभी दूरहोजायगी ÷ जिस गृहमें वायु अच्छी प्रकार से चलसके उसी गृह में शयन करना चाहिये। मस्तककीओर खिड़कीका रहना उचित नहीं है। इससे मस्तकमें अधिक वायु लगकर मस्तिष्क दिमाग में आघात करसकती है। उत्तर की ओर को मस्तक करके शयन करना भी उचित नहीं है। हमारे नवीन युवक हमारी पूर्व रीतियों को हँसकर उड़ादेते हैं। विख्यात विज्ञानके जाननेवाले डाक्टर साहब दिमागमें जो ताड़ित तेज अधिकतासे है, उसको अपनी "आत्मविज्ञान," नामक उत्तम पुस्तक में प्रमाण कर गये हैं * मस्तक वा दिमाग में जो चुम्बक = का तेज विद्यमान है इसमें संदेह नहीं। इसी

× [illegible]

÷ [illegible]

* [illegible]

= [illegible]

उन्होंने प्रमाण किया है। यदि यह सत्य है तो उत्तर की ओर को मस्तक करके सोने से इस चुम्बक वा तड़ित तेज का अधिकता से बाहर निकलजाना संभवहै। कारण कि उत्तरमें केन्द्र नक्षत्रहै चुम्बक आकर्षिणी शक्तिवाला सवपदार्थ कोही आकर्षणकरताहै *। दिमाग में तड़ित तेज थोड़ारहने से यह नक्षत्र अधिकांश तडित तेज निकाल कर दिमागको दुबलाकर डालेगा अतएव उत्तरकी ओर को मस्तक करके शयन करना अब कुसंस्कार नहीं कहसकते ० (मीज़ुडसि) यह सब बात लिखी जाने परभी इतना ही कहना चाहते हैं कि हमारी चिरकाल से प्रचलित रीतियों में दो एक के अतिरिक्त सभी अतिसुन्दर और मनुष्य के शारीरिक और मानसिक स्वच्छन्दता के लिये अत्यन्त उपयोगी हैं।

हेस्वदेशीय भगिनीगण ! तुमको लोग मूर्ख कहतेहैं कुसंस्काराविष्ट (कुसंस्कारयुक्त) कहते हैं जो जिसकी इच्छा कहने की हो कहनेदो तुम जो इस समय करती हो बिना देखे भाले उसको कभी त्याग मत करो।

स्नान — मनुष्य के शरीर में छोटे २ असंख्य छेद हैं इनको लोग लोमकूप कहते हैं। शरीरका पसीना इन्हीं सब रुवों के छिद्रों द्वारा बाहर होजाता है इनका द्वार बंद होजाने से स्वास्थ भंग होजाता है। इस कारण स्नान हमारे लिये अत्यन्त प्रयोजनीय कार्य है। हमारे शास्त्रकार गण प्रातःकालही स्नान का उपयुक्त समय लिखगये हैं। यह समय योग्य क्यों है इसको विलायत के पंडितगण कहगये हैं। डाक्टर मार्टीने कहा है रात्रि में विश्राम के उपरान्त

---

* बोध होता है कि सबने (कम्पास) को देखा होगा इस में देखा जाता है कि एक कांटा सर्वदाही उत्तरकी ओर को मुख करके रहता है इस का कारण यह है यहकांटा चुम्बक आकर्षण शक्ति वाला है अतएव केन्द्र नक्षत्र से वह खिंच जाता है॥

० नवयुवक इस प्रकार कहते हैं। नवयुवक बतलाचेंगे कबतमझोगे कि हिन्दू कर्मकाण्ड निरर्थक नहींहै।

शरीरमें बल प्राप्त होता है, रक्त की चाल तेज होती है इन सब कारणोंसे प्रातः कालही स्नान का यथार्थ समय है। *

भोजन करने के उपरान्त स्नान करना हमारे शास्त्र में निषिद्ध है इस विषय को डाक्टर मार्डी ने कहा है, "खाने की वस्तु जीर्ण करने के लिये उत्ताप की आवश्यकता है, इसके अतिरिक्त जिस समय खाने की वस्तु जीर्ण होती है ऐसे समय में किसी प्रकार से आंतों को (नखमसिसम) विचलित करना उचित नहीं है, इसी लिये भोजन करने के उपरांत स्नान करना हानिकारक है हमारे देश के लोग स्नान करने के पहले दिमागको जल देते हैं। विख्यात विलायत के पंडितों ने भी यही करने का उपदेश दिया है। सहसा पांव में जल लगने से रक्त दिमाग की ओर को दौड़ता है, दिमाग को मथन करडालता है। इससे जो स्वास्थ की विशेष हानि होती है उसका कहनाही क्या है?

हमारे देश में स्नान करने के पहिले शरीर में तेल मलना उचित है शरीरको चिकना रखने के लिये शरीर में एक प्रकार का तेल की समान पदार्थ विद्यमान है। इस तेलके समान पदार्थ रहने के कारण ही चर्म के द्वारा हम स्पर्शज्ञान प्राप्तकरते हैं स्नान के समय तेल न मलने से शरीर का यह तेल धोजाने पर शरीर की विशेष हानि होती है। तेल ठीक तौर से शरीर में रहनेपर शरीर में सहसा दूषित वायु प्रवेश नहीं करसकती। मस्तक में तेल लगाने से दिमाग को शीतल रखता है। नेत्र, कर्ण, नासिका इन में सरसों का तेल देने से यह सब इंद्रियें अच्छी अवस्था में रहती हैं। तेलों में व्यवहार के लिये सरसों का तेल अच्छा है। इस समय बाजार में अनेक प्रकार का सुगंधित तेल मिलता है और यही सब तेल हमारे देशको लिये व्यवहार करतेहैं। इसमें केश, दिमाग, और शरीर की कितनी हानि होती है सो कह नहीं सकते। यदि सुगंधित तेल लगा

* [illegible]

ने की बहुतही इच्छा हो तो अपने यह सब द्रव्य मसाले के द्वारा तैयार करलेने चाहिये ॥

स्नान के समय सम्पूर्ण अंगों के वस्त्र साफ करके धो डालने उचित हैं, क्योंकि लोमकूप (रूवों के छिद्र) सब साफ रखने स्नानका एक उद्देश्य है। किन्तु इसके लिये बहुत देरतक जल में पड़ा रहना उचित नहीं है। बहुत देरतक गीले वस्त्र व गीले केश रहने से पीड़ा होने की संभावना है, इसलिये स्नान के उपरान्त शीघ्र मस्तक और शरीर को भली भांति पोंछ डालना चाहिये। साबुन मलना उचित है कि, नहीं, बहुत कहसकते हैं। जिसका सामर्थ है उसको साबुन का व्यवहार करना अन्याय कार्य नहीं है साबन लगाओ, मट्ठा लगाओ, बेसन लगाओ, और जो चाहो सो लगाओ जिस प्रकार भी होसके शरीर को साफ रखना चाहिये। स्नान का अर्थ केवल मस्तक को जल में डुबोना नहीं है। वरन शरीर के प्रत्यक अंग प्रत्यंग को साफ करनेही का नाम स्नानहै अतएव मुख धोना भी स्नानका अंश कहाजाता है। सबकोही प्रतिदिन दांत और जीभ का साफ करना उचितहै। दांत साफ रखने के लिये कोयलाही उत्तम द्रव्य है। कोयला दुर्गन्धिका नाश करता है, और दांतको कठिन तथा सख्त रखता है। मल त्याग करने के उपरान्त अति उत्तमता से शरीर धोना चाहिये। प्रस्राव के समय भी जलका व्यवहार करना विशेष प्रयोजन है प्रतिदिनही स्नान करना चाहिये, परन्तु हमारे देशकी स्त्रियें यह नहीं करतीं। "बाल नहीं सूखेंगे" इस भयसे स्वास्थ नष्ट करना, कहांतक युक्ति संगत है, इस को वही जानें ॥

भोजन—मनुष्य के जीवनका भोजनभी एक प्रधान कार्य है। भोजन न करने से प्राण नहीं रहता, अतएव भोजन के ऊपर स्वास्थ जो सम्पूर्ण निर्भर करता है, उसका कहना बाहुल्यमात्र है अनेक देशों में अनेक प्रकार से आहार की व्यवस्था है। मनुष्य सर्व

भुक् अर्थात् सब वस्तु का खानेवाला है. जिसको मनुष्य न खायें
ऐसा कोई द्रव्यही नहीं है। प्रसिद्ध विज्ञान के जाननेवाले डारउइन
साहब ने एक प्रकार के कीड़े का खाना बहुत अच्छा कहा है; जब
कि मनुष्य सभी खाता है तब क्या सभी मनुष्य का खाद्य है!
डाक्टर स्मिथ ने फलही मनुष्यका उपयुक्त खाद्य नामक पुस्तक
में मनुष्य की गठन प्रणाली दिखाकर प्रमाण किया है कि फल
मूलही मनुष्य का यथार्थ खाद्य है। बोध होता है मनुष्य के लिये
एक खाद्य सर्वत्र उपयुक्त नहीं होसक्ता। देशके भेद से अनेक स्थान
के जल वायु के भेदसे आहार का प्रबंध होनाही कर्तव्य है। अन्य
देश की बात न कहकर केवल अपनेही देशकी बात कहेंगे। हिन्दू-
शास्त्र में बहुत द्रव्योंको अखाद्य कहकर लिखा है। क्या इसका
कोई अर्थ नहीं है! अमुकदिन में अमुक द्रव्य नहीं खाना चाहिये,
अमुक नक्षत्र में अमुकद्रव्य खाने से महापाप होता है, क्या इसका
कोई माने नहीं है शरीर के संग नक्षत्रादि का कितना सम्बन्ध है,
वह इस छोटी पुस्तक में लिखना असंभव है। यदि इस में किसी
का अविश्वास हो उसको (मेकार) नामक विख्यात् विलायती
विज्ञान के जाननेवाले की पुस्तक पढ़ने का अनुरोध करते हैं * यदि
नक्षत्रादिक के परिवर्तन से इस देह और जगत् का परिवर्तन
होता है, तो क्यों नहीं एक दिन जो आहार शरीर को पुष्टिकारक
है दूसरे दिन वही हानिकारक होगा? हिन्दू जिसको अखाद्य कहते
और मानते, वह सम्पूर्ण अनुपयुक्त वस्तु है, वह विलायती विज्ञान
की सहायतासे प्रमाण किया जा सक्ता है। किन्तु इस पुस्तक में
इतना स्थान नहीं है इस लिये केवल एक दो बात कहेंगे। यह
कहने के पहिले हमारे शरीर के भीतर किस प्रकार आहारीय द्रव्य
रक्त में परिणत होता है वही आगे लिखेंगे। डाक्टर सिंहमन ने
लिखा है आहारीय द्रव्य कुछ के भीतर [illegible]

* [illegible]

(सैलावा) के साथ मिलकर इस को नरम और एक प्रकार का भिन्न पदार्थ कर डालता है * खाद्य इसके उपरान्त गलेकी नली के भीतर होकर पाकयन्त्र (स्टोमक्) में जाता है इस स्थान में प्रायः आधसेर परिमाण जलीय पदार्थ रहता है (गैस्ट्रिकफ्लूइड) इस पदार्थ के संग आहारीय द्रव्य संयुक्त होनेसे वह तरल होजाता है, इसको अंग्रेजी में " चाइम " कहते हैं। इसके पीछे यही तरल " चाइम " नाड़ी के भीतर जाता है, और एक प्रकार के तरल पदार्थ से मिलकर दो भागों में विभक्त होताहै । एक भाग तो प्रायः मुखकी समान होजाता है, इसको " फाइल " कहते हैं, दूसरा भाग मल मूत्र में परिणत होता है । छोटी२ असंख्यथैली "चाइल" को खैंच लेती हैं । तब वही " चाइल " छोटी २ नलियों के द्वारा क्रम से कंधे के निकट रक्त के संग संयुक्त होता है, फिर दक्षिण के फुस२ में प्रवेश करता है । इस स्थान में यह प्रश्वासके द्वारा दूषित अंशको बाहर फेंकदेता है, और निश्वासके द्वारा आकसिजन नामक द्रव्य को निकाल कर रक्त को साफ करता है । इसके पीछे साफ हुआ रक्त बांये फुस२ में जाता है; और नसके द्वारा शरीर के प्रत्येक स्थान में व्याप्त होकर रहता है × रक्त और भी अनेक प्रकार से अनेकों स्थान का कार्य करता रहता है । रसायनी लोग कहते हैं कि रक्त के एक परमाणु में अठारह प्रकार के भिन्न पदार्थ हैं ÷ दुग्ध के सिवाय इस प्रकारका कोई द्रव्य नहीं है कि केवल उसको ही सेवन करने से मनुष्य जीवित रहसके । अतएव दुग्ध के जो सब द्रव्यहैं, वही द्रव्य जो अधिक परिमाण हैं, उनका ही मनुष्यों

---

* डाक्टर बी० न्यमैन एम० डी० का लेख जिन्दगी के विषय में देखो ॥

× इससेही प्रमाणहोता है कि राल हाजमें के लिये एक विशेष आवश्यकीय पदार्थ है, जिस से वह राल अधिक उत्पन्नहो वही करना उचित है, पानसेही यह बहुत उत्पन्न होती है इस लिये पानही खाना चाहिये ॥

÷ डाक्टर गुडसकी किताब देखो ॥

को आहार करना चाहिये मुरगी का मांस हमारे शास्त्र में क्यों निषिद्ध है ? मुरगी के मांस में क्या है ! यदि हम अनुसंधान करैं तो देखा जाता है कि इस में " कारबलिक असिड् ,, और पाग अधिक विद्यमान हैं, यह दो पदार्थही शरीर के लिये हानिकारक हैं, और विशेष करके भारतवर्ष ऊष्ण प्रधान देश है अब अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं है, आहार के विषय में विशेष करके सावधान रहना सब कोही उचित है । क्रमानुसार आहार करना कर्तव्य नहीं, क्योंकि इस में पाकस्थली को हजम करने के लिये समय नहीं दिया जाता बहुत देरतक बैठकर भली प्रकार चावकर आहार करना चाहिये, दिन में एक प्रकार का आहार रात में और एक प्रकार का आहार, इस प्रकार समय देखकर आहार करना कर्तव्य है । इस विषय में हमारे ऋषि गण जो प्रथा और नियम स्थापन करगये हैं उसी के अनुसार चलैं तो किसी को भी पीड़ा नहो ।

पान आहार वायु प्रकाश इत्यादि मनुष्य के जीवनकी रक्षा के लिये जिस प्रकार आवश्यक हैं, पानभी इसी प्रकार है, बोध होता है प्राणी की प्राण रक्षा के लिये जल की सृष्टि है, यह जल यदि दूषित हो तो वह विषकी समान जानकर त्याग करने के योग्य है । इसका कहनाही क्या है ! किन्तु कौन मनुष्य इसको समझता है । बालू और कीचड़ से अत्यन्त दूषित जलभी साफ होजाता है यह किसी समय भी कोई न भूलै, यद्यपि जलपान उसकोभी स्वीकार है परन्तु दूषित जलपान न करै यह प्रतिज्ञा सबकोही करनी चाहिये ।

अतिशय अधिक जलपान व अल्प जलपान यह दोनोंही निषिद्ध हैं भोजन के समय थोड़ा जल पीना उचित है । अत्यन्त थके हुए को विश्राम न करके जलपान विषपान की समान है । थके हुए को कष्ट, कम्प, और देर तक जल द्वारा पीने से अत्यन्त विश्राम बोध होता है । जल के अतिरिक्त और पानी किसी प्रकारभी इच्छा करके नहीं

(सैलावा) के साथ मिलकर इस को नरम और एक प्रकार का भिन्न पदार्थ कर डालता है * खाद्य इसके उपरान्त गलेकी नली के भीतर होकर पाकयन्त्र (स्टोमक्) में जाता है इस स्थान में प्रायः आधसेर परिमाण जलीय पदार्थ रहता है (गैस्ट्रिकफ्लूइड) इस पदार्थ के संग आहारीय द्रव्य संयुक्त होनेसे वह तरल होजाता है, इसको अंग्रेजी में " चाइम ,, कहते हैं । इसके पीछे यही तरल " चाइम ,, नाड़ी के भीतर जाता है, और एक प्रकार के तरल पदार्थ से मिलकर दो भागों में विभक्त होताहै । एक भाग तो प्रायः मुखकी समान होजाता है, इसको " फाइल ,, कहते हैं, दूसरा भाग मल मूत्र में परिणत होता है । छोटी२ असंख्यथैली "चाइल ,, को खैंच-लेती हैं । तब वही " चाइल ,, छोटी २ नलियों के द्वारा क्रम से कंधे के निकट रक्त के संग संयुक्त होता है, फिर दक्षिण के फुस २ में प्रवेश करता है । इस स्थान में यह प्रश्वासके द्वारा दूषित अंशको बाहर फेंकदेता है, और निश्वासके द्वारा आकसिजन नामक द्रव्य को निकाल कर रक्त को साफ करता है । इसके पीछे साफ हुआ रक्त वांये फुस२ में जाता है; और नसके द्वारा शरीर के प्रत्येक स्थान में व्याप्त होकर रहता है × रक्त और भी अनेक प्रकार से अनेकों स्थान का कार्य करता रहता है । रसायनी लोग कहते हैं कि रक्त के एक परमाणु में अठारह प्रकार के भिन्न पदार्थ हैं ÷ दुग्ध के सिवाय इस प्रकारका कोई द्रव्य नहीं है कि केवल उसको ही सेवन करने से मनुष्य जीवित रहसके । अतएव दुग्ध के जो सब द्रव्यहैं, वही द्रव्य जो अधिक परिमाण हैं, उनका ही मनुष्यों

---

* डाक्टर वी० न्यमैन एम० डी० का लेख जिन्दगी के विषय में देखो ॥

× इससेही प्रमाणहोता है कि रक्त हाजमें के लिये एकविशेष आवश्यकीय पदार्थ है, जिस से यह रक्त अधिक उत्पन्नहो वही करना उचित है, पानसेही यह बहुत उत्पन्न होता है इस लिये पानही खाना चाहिये ॥

÷ डाक्टर गुडम्यकी किताब देखो ॥

को आहार करना चाहिये मुरगी का मांस हमारे शास्त्र में क्यों निषिद्ध है ? मुरगी के मांस में क्या है ! यदि हम अनुसंधान करैं तो देखा जाता है कि इस में " कारबलिक असिड ,, और पारा अधिक विद्यमान है, यह दो पदार्थही शरीर के लिये हानिकारक हैं, और विशेष करके भारतवर्ष ऊष्ण प्रधान देश है अब अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं है, आहार के विषय में विशेष करके सावधान रहना सब कोही उचित है । क्रमानुसार आहार करना कर्तव्य नहीं, क्योंकि इस में पाकस्थली को हजम करने के लिये समय नहीं दिया जाता बहुत देरतक बैठकर भली प्रकार चाबकर आहार करना चाहिये, दिन में एक प्रकार का आहार रात में और एक प्रकार का आहार, इस प्रकार समय देखकर आहार करना कर्तव्य है । इस विषय में हमारे ऋषि गण जो प्रथा और नियम स्थापन करगये हैं उसी के अनुसार चलें तो किसी को भी पीड़ा नहो ।

पान आहार वायु प्रकाश इत्यादि मनुष्य के जीवनकी रक्षा के लिये जिस प्रकार आवश्यक है, पानभी इसी प्रकार है, बोध होता है प्राणी की प्राण रक्षा के लिये जल की सृष्टि है, यह जल यदि दूषित हो तो वह विषकी समान जानकर त्याग करने के योग्य है । उसका कहनाही क्या है ! किन्तु कौन मनुष्य इसको समझता है । बाल और कोयले से अत्यन्त दूषित जलभी साफ होजाता है यह किसी समय भी कोई न भूलै, मरभीजाय उसकोभी स्वीकार है परन्तु दूषित जलपान न करै यह प्रतिज्ञा सबकोही करनी चाहिये ।

अतिशय अधिक जलपान व अल्प जलपान यह दोनोंही निषिद्ध हैं भोजन के समय थोड़ा जल पीना उचित है । अत्यन्त थके हुए को विश्राम न करके जलपान विषपान की समानहै । थकेहुए को, चक्षु, कर्ण, और पैर जल द्वारा धोने से अत्यन्त विश्राम बोध होता है । जल के अतिरिक्त और पानी किसी प्रकारभी इच्छा करके नहीं

पीना चाहिये । इस समय अंग्रेजी रीति पर अनेक प्रकार का पाना इस देश में क्रम से प्रचलित होगया है. इससे देशका कितना सर्वनाश होता है, उसको केवल विचारवान मनुष्यही जानते हैं । सुलभ मूल्यका भाव रहनेपर "लिमनेड,,का पान क्यों कियाजाताहै?

परिश्रम-ऊपर शरीर के सम्बन्ध में जो सब कार्य विशेष प्रयोजनीय कहकर लिखगये हैं परिश्रम भी ठीक उसीप्रकार आवश्यकीय और प्रयोजनीय है । बहुत से कहते हैं कि जिसको परिश्रम नहीं करना पड़ता वह बड़ा सुखी है, उनकी यह कितनी भूल है सो कहनहीं सकते ! परिश्रम न करने से शरीर कुछ भी स्वस्थावस्था में नहीं रहता । परिश्रम शारीरिक और मानसिक दो प्रकार का है यह दो प्रकार का परिश्रमही मनुष्य के जीवनमें विशेषप्रयोजनीयहै यहांकी स्त्रियें जो इतनी पीड़ित, क्षीण और दुर्दशापन्नहैं, इसकाकारण उनका उपयुक्त परिश्रम नहींहै, पुस्तक पढ़ने या यत्किंचित् सुईके कामके सिवाय शारीरिक व मानसिककोई कार्यभी उनका नहींहै अतएव पीडा आनकर दिन २ उनको घेर लेती है, संतानादि भी उनकही अनुरूप होती हैं, तुम राजा की स्त्रीहो या भिक्षुक की स्त्रीहो, जिस प्रकार करतीहो प्रतिदिन नियमित परिश्रम करो, यदि पृथ्वी में सुख स्वच्छन्दता से रहना चाहतीहो तो सदा परिश्रम करो, क्योंकि सदाही किसी न किसी कार्य में नियुक्त रहकर मनको मग्न रखनाही सुख है ॥

साधारण उपदेश ॥

कौन सदा स्वस्थ व सबलशरीर और पूर्णयौवनमें रहनेकी इच्छा नहीं करता है किसलिये तुम बीस वर्षकी होनेपरबूढीहो " और किसकारण देखतेहैं कि अंग्रेजोंकी स्त्रियें बूढी होनेपरभी बीसवर्षकी समान रहती हैं ! किस कारण तुम्हारी सन्तान संतति कुरूप कदाकार, और प्लीहा (यकृत) युक्त जन्मती है और किस अर्थ, अल्प

देशकी संतान संतति सबळ स्वस्थ और सुंदर होकर उत्पन्न होती है ? और देश की बात कौन कहे, किसकारण तुम्हारी पूर्वकालकी स्त्रियें इतनी सुंदर और इतनी दीर्घायु वाली थीं ? किस लिये हमारे पूर्व पुरुषगण इतने बलवान और बलिष्ट थे ? और किस कारण से तुम इतनी अल्पायु तथा क्षीण काया हो और किसानिमित्त हम इतने दुर्वळएवंदीन हैं ? यदि नियमानुसार शरीर और मनको रखसको तो तुम यह क्या उनकी अपेक्षा उन्नत अवस्था में रहसकती हो ॥

शरीर और मन— शरीर और मनके साथ अति निकट सम्बंधहै शरीर के संग मनजड़ित और मनके संग शरीर जड़ित है इस लिये सुख और स्वच्छंद रहने के कारण मन और शरीर दोनोंको स्वस्थ रखना होता है। जिन सब वृत्तियोंके रहने से मन में कष्ट हो उनको सबसे पहले त्यागना चाहिये। क्रोध के मन में उत्तेजित होने से मन में क्लेश होगा शरीरकी भी विशेष हानि होगी। यह स्पष्टही देखा जाता है, हिंसा सदा मन में रहने से मनभी सदा कष्ट में रहता है, इस प्रकार और भी अनेक वृत्ति हैं। शरीर को नियमानुयायी रखने से किसी प्रकार भी शरीर में कोई व्याधि नहीं आसकती। वैसेही मनको भी नियमानुयायी रखने से मन में भी किसी समय कोई व्याधि प्रवेश नहीं कर सकती। मन के विषय में कुछ कहना इस पुस्तक का उद्देश्य नहीं है * अतएव शरीर को स्वस्थ रखने पर मनको भी जो स्वस्थ रखना कर्तव्य है इसका उल्लेख मात्र किया है।

स्वास्थ रक्षाके सम्बन्ध में कई एक प्रधान २ विषयमात्र लिखे हैं जो और २ पुस्तकों में नहीं लिखे हैं, वही इस में लिखेगये हैं ॥

स्वास्थ रक्षाके सम्बंध में जिस का जानाना सबकाही आवश्यकहै वह और २ अनेक पुस्तकों के पढ़ने से जाना जायगा। ÷

---

* नारीहृदयतत्व नामक पुस्तक में यह विशेष करके लिखागया है।

÷ डाक्टर वैनिठ का बयान स्त्रियों के वस्त्र के विषय में देखो ॥

ऋतु सम्बन्धी पीड़ा ॥

शरीरको सावधान और नियमानुयायी रखने से किसी समय पीड़ा नहीं होगी, किंतु कितने मनुष्य ऐसा करते हैं अनेकों को अन जान मेंही शहशः पीड़ा आनकर पकड लेती हैं । पीड़ा आनेपर सब पीड़ाओं में चिकित्सक को बुलाया जाताहै. किंतु यदि इन्द्रिय सम्बन्धी पीडा हो तो वह विषय कोई नहीं जान सकता । पुरुषतो भी किसी न किसी से कह देता है, स्त्रियें किसी से भी नहीं कहतीं पीड़ाकी यंत्रणा से मरजाती हैं परंतु तोभी किसी से नहीं कहतीं केवल स्वयंही कष्टपाती हैं यही नहीं वरन रोगी संतान को जगत् में लाकर महापाप से कलंकित होती हैं। प्राणकी अपेक्षा प्रियतम स्वामी को भी पीड़ाका भागी करती हैं, किसी बातका ध्यान नहीं करतीं पीड़ा का मर्म कोई भी नहीं जान सकता, कब यहघोर महापापमय " छिपाना ,, देशसे दूर होगा । नीचे ऋतु सम्बंधीय प्रधान २ पीड़ा का हाल लिखते हैं इसको मनलगा कर पढ़ने से वह स्वयंही एक प्रकार अपनी २ पीड़ाकी चिकित्सा करसकैंगी विख्यात् चिकित्सक बेनेट् साहब ने इस छिपाने से पृथ्वी में कितनी हानि होती हैं उस को दिखादिया है * (स्त्री योनिस्थ) स्त्रीकी जननेन्द्रियका गठन संक्षेप से लिखते हैं, इस के भीतर कोई अंग किसी प्रकार से सूज जाय वा उस में घाव होजाय उसके देखने के लिये " स्पेकुलाम् " नामक एक प्रकार का यंत्र है ※ इस यंत्रकी सहायता से जननेन्द्रिय सम्बन्धीय अनेक पीड़ाओं का विषय अवगत होगया है इसकी सहायता से (हस्तद्वाराभी) इस समय इस पीड़ा का मर्म जानने में अधिक क्लेश नहीं होता। यथार्थ में क्या पीड़ाहुई है उस कारणके खोजकरने का प्रयोजन है, फिर उसकी चिकित्साकी (व्यवस्था)

---

* डाक्टर यदुनाथ मुखोपाध्याय प्रणीत " शरीरपालन " उपयोगी है ॥

※ पारिसनगर के विख्यात् केसरकामिदर साहब ने इस यन्त्र को प्रगट किया है ॥

करनी चाहिये । जिससे सहज मेंही सबकी समझ में आजाय । इस प्रकारके विचारसे हम इस सबपीड़ाकी चिकित्सा प्रणाली लिखेंगे ॥

रक्तबन्ध (अमेनोरिया) इस पीड़ा से सहसा ऋतुकाल में रक्तबंद होजाता है और अत्यंत क्लेश होता है, नीचे लिखे विषयही इस पीड़ाके कारण है अधिक रक्तस्राव से दुर्वलता, अन्यान्य पुरानी और कठिन पीड़ा, सहवासकी अधिकता, इन्द्रिय सम्बंधी किसी अंग में पीड़ा, अत्यन्त शीतलता, सहसा मानसिक उत्तेजना (राग, भय, इत्यादि) इस पीड़ा के होतेही इन सब कारणों को दूरकरना चाहिये । इस के उपरान्त नीचे लिखे प्रकार से कार्य करना चाहिये मानसिक उत्तेजना पहले दूरकरके जिससे मन स्वस्थ रहे वही करना कर्तव्यहै रात्रि कालमें वायु, वा शिशिर का लगना उचित नहीं है रात्रि में जागरण व मांसादिक और अधिक मसाले का पड़ाहुआ द्रव्यादि आहार बंदकरना चाहिये । प्रतिदिन नियमित समय में आहार करके उदर अधिक पूर्ण करना उचित नहीं है । सहवास की अधिकता जिस से किंचित् मात्रभी नहो इस ओर को विशेष दृष्टि रखना चाहिये सदा कार्य में रहने से और मनको सुस्थ रखने से यह पीड़ा स्वयंही दुर होजायगी, यदि आरोग्य न हो, तो अवश्यही औषधी पान करनी होगी ÷ औषधी सेवन न करने से यदि चली जायतो औषधी सेवनका अनुरोध नहीं करते सहसा रक्त बंद होने पर तिसी समय अतिउष्ण जल से स्नान करना चाहिये और फिर कपड़े से अंगपोंछकर जिस से खूब पसीना निकले ऐसे कार्य के करने का प्रयोजन है ।

÷ इस पुस्तक में स्त्री और बालकोंकी पीड़ा की औषधी होमियोपैथिक के मत से लिखी गई है इन सबपीडाओं में होमियपैथिक अत्यन्त गुणकारक है, इस के सिवाय होमियोपैथिककी औषधियोंका स्त्रियें सहजमें व्यवहार करसकेंगी ॥

"एकोनाइट,, = का बीच२ व्यवहार करनेसे पसीना खूब निकलेगा यदि शीतलता के कारण बंद होरहा है तो 'पलसिटिला' अच्छा है यदि राग (गुस्से) के कारण हो तो "क्यापोमिला,, का इस्तेमाल करे यदि भयके कारण हो तो "ओपियम,, वा, बेराट्राम,, उपयोगी है, यदि दुःख के कारण होतो "इग्नेसिया,, यदि आनन्द के कारण तो "कॉफिया,, * का इस्तेमाल करें। यह पीड़ा गर्भस्थली के मुख में घाव व अण्डस्थली में सूजन होनेके कारण होजाती है = इस लिये प्रथम देखना आवश्यक है कि इसका यथार्थ कारण क्या है ?

अल्पऋतु ।—(मयन्स टूएशन एकज़ाकिया) शारीरिक दुर्बलताही इसका कारण है। जिस से शरीर स्वस्थ रहे, वही प्रथम करना चाहिये। यदि अल्प और जलकी समान ऋतु पीठ के दंडमें बेदना और शीत के साथहो, तो "पलसिटिला,, व्यवहार करने से आराम होसकता है, यदि मस्तक में बेदना और उदरमें जरा जरा शीत हो तो "सिपिया" का व्यवहार करना ठीक है ॥

= हौमियो पैथिक औषधी चारप्रकार से व्यवहार कीजाती हैं १ अर्क (टिंचर्स) २ य, बड़ीवटी (पिल्यूल्स) ३ य, छोटीवटी (ग्लोब्यूल्स) ४ र्थ (ट्रीट्च्यूरेशन) बड़े के लिये एक बूंद अर्क व वटी बालक के लिये उस से आधी शिशु के लिये उस सेभी आधी। पीड़ाकी अवस्था देखकर औषधि व्यवहार का समय नियत करना चाहिये १० दस रुपये देने सेही सब आवश्यकीय पीड़ाओंकी औषधियोंका एक बक्स मिलता है। यह औषधी जिस प्रकार व्यवहार करनी चाहिये वह इस बक्स के साथवाली पुस्तक से जानाजावेगा ॥

* ९६ अंश के उष्णजल से शरीर को स्नान करावे और कुछ जुलाबकी औषधी और आई पिकाकयानामी न्यूनमात्रा में देवे कि जिससे वमनकी इच्छाहोवे—इस के बाद हींग और अहिफेनकी पिचकारी गुदा के स्थानमें लगावे जो कि प्रायः जादूसी आरोग्यता रखती है ॥

= डा, टिन्ड का लेख स्त्रियों की व्याधियों के विषय में देखो।

ऋतुका अनियम—[इर्रेगेलर मयन्स्यूरेशन] कभी महीनेमें २।३ बार ऋतु होती है और कभी २। ३। महीने में एकबारभी नहीं होती। शरीरकी दुर्बलताही इसका कारण है। इन्द्रिय वृत्तिको अतिशय आश्रय देना, वा, एकबारही बंद करना ऋतुकाल में शीतलजल अतिशय व्यवहार करना, रात्रिकाल में शरदी लगने देना इत्यादि इस के विशेष कारण हैं। जिस से शरीर सुस्थरहै, ऐसाकरना चाहिये। तीनदिन "पलासिटिला" और ३ दिन "चाइना," इसी प्रकार व्यवहार करने से ऋतुका यह अनियम दूर होना संभव है।

ऋतु की अस्वाभाविकता (विकोरियसमयन्स्युरेशन) कभी २ ऋतु बंद होकर अन्य किसी स्थानसे रक्तनिर्गत होताहै वा रक्तके वदळे स्त्रीकी इन्दियसे अन्यप्रकार पदार्थ निर्गत होता है। रक्त वमन नासिका, कर्ण स्तन, मुख, नख, इत्यादि शरीर के अनेक स्थानोंसे रक्तपात और श्वेत प्रदर इत्यादि भी होता रहता है, इसको देखकर डरने की आवश्यकता नहीं है, जिससे स्वास्थ अच्छाहो वही करना चाहिये नियमित प्रकार सहवासभी प्रयोजनीय है। ऋतुके नियमित आरम्भ होने से यह सब पीड़ा आपही जाती रहेगी, तोभी नितान्त पीड़ा की अधिकता होने से नीचे लिखे अनुसार औषधी का व्यवहार करना आवश्यक है यदि क्लेश दायक खांसी से छाती में वेदना और उसके संग मुखके द्वारा रक्त निकले तो "ब्राइओनिया," इस्तेमाल करै यदि शरीर भनझन करै और रक्तवमन हो तो "इपिकयाक्," यदि छाती में वदना हो सदा नासिका और कर्ण से रक्त पातहो तो "पलसिटिला," हामिमालिस; रक्तपातकी अच्छी औपधी है यह प्रदरको भी विशेष उपकारी है *

* (जार्स लिखते हैं ४० साल)

ऋतुकाल के दश दिन पहिले से यदि सिलिसियाका इस्तेमाल किया जाय तो विशेष उपकार होसकता है। यदि गर्भ वेदना की समान वेदना बोध हो, यदि जमा हुआ रक्त निर्गत होतो "कामोमिला„ उपकारी है। यदि तलपट में भयानक वेदना मूत्रकी थैली में व उदर में अतिशय वेदना, पसीना और "चपचप„ करके रक्तपात होतो सिकेल इस्तेमाल करने से विशेष उपकार दीखता है रोगी की अवस्था देखकर औषधी की व्यवस्था करनी चाहिये। शरीर को सुस्थावस्था में रखने से यह सब पीडा जितनी कम होती है, उतनी और किसी से भी नहीं होसकती, प्रथम इसको न छिपाकर दूर करने की चेष्टा करने से यह सहज में ही दूर होती है, परन्तु एकवार शरीर को दृढ़ रूप से पकड लेनेपर फिर दूर करना कठिन होजाता है।

रक्तस्राव।—(मयनोरिया) हमारे देश में स्त्रियों को यहभयानक पीडाभी अक्सर होजाती है। इस पीडाके कारण ऋतु के पूर्व से अन्त पर्यन्त भयानक रक्तस्रावहोता है। यही क्या महीने के महीनेमें इसीप्रकार रक्तपात २।३ बार होताहै = जिसके सन्तानहुई है उसके औरभी भयानक रूप से रक्तपातहोता है, यही नहीं वरन रक्तस्राव के कारण दुर्वल होकर रोगी मूर्छित होजाता है। प्रथम इस पीडा का ध्यान न करने से शेष में यंत्रणा भोग करनी होती है। बहुतों को विश्वास है कि जिसका जितना रक्त ऋतु के समय गिरे, उसका स्वास्थ उतनाही अच्छा है, यह सम्पूर्ण भूल है, स्त्रियों का ऋतुकाल में कितना रक्तपात होना स्वाभाविक है उस का स्थिर करना कठिन है। शरीर को देख कर सब का रक्तपात होता है।

= रक्त दोप्रकारसे पात होसकता है एक साधारण रक्त स्त्रीकी इन्द्रिय से गिरता है और एक अनुकारक जो रक्त कपड़े में लगकर कपड़े को खुरैरा कर दे जमजाय, वही साधारण रक्त है। (सी डाक्टर वयनशट)

बाधक ।—(डिसमयनोरिआ) ज्ञात होता है यह पीड़ा इस देश की स्त्रियों के मध्य में अनेकों को है इसकी यंत्रणा से मरजाना स्वीकार है, सन्तान के न होने से मनमन में दिन रात रोना भी स्वीकार है। परन्तु किसी से भी इस पीड़ा का हाल नहीं कहतीं। ऋतुकाल में अति अल्प व अधिक रक्तपात के संग गर्भस्थली में गर्भ वेदना की समान वेदना पृष्ठ, पार्श्व, तलपट में भयानक वेदना, माथे का दुखना अत्यन्त वेगसे स्वांस का आना और जाना इत्यादि असह्य यंत्रणा इस पीड़ा के वशहोती रहती हैं। यह वेदना कभी कभी ६। ७ घंटे वा ६। ७ दिन तक क्रमानुसार रहती है, वा कभी कुछेक जमाहुआ रक्त निकलजाने पर वेदना कम होजाती है। कभी २ स्तन में भयानक वेदना होती है जिन स्त्रियों को बाधक पीड़ा होती है, उन सब को प्रायः पेट की पीडा होती है। × बाधक होने से संतान होने की सम्भावना नहीं है।

गर्भस्थली के मुख में सूजन होने से और अंडस्थली किसी प्रकार पीडित होने से यह पीडा उत्पन्न होती है। किस कारण गर्भस्थली के मुख पर सूजन और अंडस्थली पिड़ित होती है? यह पीछे लिखेंगे यह पीडा होनेपर सहवास एक वारही वंद करके * जिस से शरीर स्वस्थावस्था में रहे वही करना चाहिये। प्रतिदिन प्रात स्नान नियमित आहार और अल्प परिश्रम करनेका विशेष प्रयोजन है, वेदना के समय तलपट में गरम जल पूर्ण बोतल वा गरम जल में भिगोकर फुलालेन के द्वारा ताप देने से वेदना कम होसकती है।

× यदि गर्भस्थली का मुख सूजना वा अंडस्थली का पीड़ितहोना इसपीड़ा का कारण नहीं है तो सहवास इसपीडाका उपकार करसकता है।

* आम बीमारियां औरतोंकी जोड़ा, ई, एच, रक्क एम, डी ने लिखीहैं वह देखो। डा, ऐशवयल कहते हैं कि प्रसूतरोग प्रायः विवाह और बच्चा पैदाहोने से आराम होजाता है उसपुस्तकमें देखो जोकि स्त्रियोंकी व्याधियोंके विषय में है।

ऋतुकाल के दश दिन पहिले से यदि सिक्लिसिपाका इस्तेमाल किया जाय तो विशेष उपकार होसकता है। यदि गर्भ वेदना की समान वेदना बोध हो, यदि जमा हुआ रक्त निर्गत होतो "का मोमिला,, उपकारी है। यदि तलपट में भयानक वेदना मूत्रकी थैली में व उदर में अतिशय वेदना, पसीना और "चपचप,, करके रक्तपात होतो सिकेल इस्तेमाल करने से विशेष उपकार दीखता है रोगी की अवस्था देखकर औषधी की व्यवस्था करनी चाहिये। शरीर को सुस्थावस्था में रखने से यह सब पीड़ा जितनी कम होती है, उतनी और किसी से भी नहीं होसकती, प्रथम इसको न छिपाकर दूर करने की चेष्टा करने से यह सहज में ही दूर होती है, परन्तु एकबार शरीर को दृढ़ रूप से पकड़ लेनेपर फिर दूर करना कठिन होजाता है।

रक्तस्राव।—(मनोरिया) हमारे देश में स्त्रियों को यहभयानक पीड़ाभी अकसर होजाती है। इस पीड़ाके कारण ऋतु के पूर्व से अन्त पर्यन्त भयानक रक्तस्रावहोता है। यही क्या महीने के महीनेमें इसीप्रकार रक्तपात २।३ बार होताहै = जिसके सन्तानहुई है उस के औरभी भयानक रूप से रक्तपातहोता है, यही नहीं बरन रक्त-स्राव के कारण दुर्बल होकर रोगी मूर्छित होजाता है। प्रथम इस पीड़ा का ध्यान न करने से शेष में यंत्रणा भोग करनी होती है। बहुतों को विश्वास है कि जिसका जितना रक्त ऋतु के समय गिरै, उसका स्वास्थ उतनाही अच्छा है, यह सम्पूर्ण भूल है, स्त्रियों का ऋतुकाल में कितना रक्तपात होना स्वाभाविक है उस का स्थिर करना कठिन है। शरीर को देख कर सब का रक्तपात होता है।

= रक्त दोप्रकारसे पात होसकता है एक साधारण रक्त स्त्रीकी इन्द्रिय से गिरता है और एक ऋतुकारक्त जो रक्त कपड़े में लगकर कपड़े को खुरैरा कर दे जमजाय, वही ऋतुका रक्त है। (सी डाक्टर बयनयट)

जब ऋतुकाल में रक्तपात के कारण दुर्बलता बोध हो, उसी समय जानना होगा कि तुमको पीड़ा हुई है, तभी से शरीर का यत्न न करने से फिर यह पीड़ा इस प्रकार का भयानक आकार धारण करती है कि जीवन में संशय होजाता है, यह पीड़ा अनेक प्रकार और अनेक भाव से उत्पन्न होसकती है।

यह पीड़ा अनेक कारणों के वश होती है, सहवास की अधिकता भी इस का एक प्रधान कारण है। ऋतुकाल में शीतल जलका लगने देना, रात्रि में जागना, शरीर पर अत्याचार इस प्रकार बहुत कारणों से यह पीड़ा उत्पन्न होती है। इस पीड़ा के होने पर प्रति दिन प्रातस्नान, लघुद्रव्य आहार सहवास एक बारही बंद करना और थोड़ा २ परिश्रम करने का प्रयोजन है। जिस समय रक्तपात होताहो तो, भीत न होकर स्थिर होकर शयन करना चाहिये, स्त्रीकी इन्द्रिय में बरफ रखने से उपस्थित रक्तपात बंद होसकता है इस के उपरान्त नीचे लिखी हुई अवस्थानुसार औषधीका व्यवहार करनेसे पीड़ा आरोग्य होसकती है, ।

यदि हठात् कोई भारी वस्तु उठाने के कारण, परिश्रम के कारण वा गिर ने के कारण रक्तपात हो तो उसको "आर्णिका" खूब लाल रक्तपात होता हो; नेत्रों से कम दीखता हो, शिश्नके द्वारपर जलन होती हो तो "स्याबिना" काले वर्ण का जमा रक्तपात होता होतो "क्रोकास,, यदि शरीर झन २ करे और भयानक रक्तपात हो तो "इपिकाक ,, का सेवन करै यदि ऋतु काल में अधिक रक्तपात होकर रोगी को मदर होतो उस को "क्यालकेरिया,, का इस्तेमाल करना चाहिये ।

साधारण व्याधि ॥

प्रदर ।—(ल्यूकर्योरिया) यह पीडा स्त्रियों को सब समय मेंही होसक्ती है । २ । ३ तीन वर्ष की अवस्था वाली बालिका कोभी यह पीडा होते देखा जाता है, और साठ वर्ष की अवस्था वाली वूढी कोभी होती है स्त्रियों को जितने दिन तक ऋतुहोती है, तबतक इसपीडाका होना अधिक संभव है । स्त्री की इन्द्रिय और गर्भस्थली में किसीप्रकार की सूजनहोने से इस स्थल में जो अति कोमल चर्म है (म्यूकस मयमबरन) उसमें एकप्रकारका घावहोताहै, और इस घाव से तरल एकप्रकार का पदार्थ निकलता रहता है, कभी कभी यह तरल पदार्थ (हरिद्रा) वा सब्ज वर्ण का होता है कभी घना और कभी पतला होता है, कभी २ अत्यन्त मन्द गन्धयुक्त होता है । सदाही तरल पदार्थ इसीप्रकार निर्गत होता रहता है । प्रथमही प्रथम इस के द्वारा शरीर की किसी प्रकार हानि नहीं होती, फिर क्रमसे जितनी पीड़ा की वृद्धि होती है उतनाही स्वास्थ नष्ट होता है, दुर्वलता वोध होती है, अग्नि मन्द होती है, मस्तक का घूमना प्रारम्भ होता है, इस पीड़ा को स्त्रियें प्रथम कुछ न समझ कर पीछे इतना कष्ट पाती हैं, ज्ञात होता है इस देशकी सौ स्त्रियों में सत्तर स्त्रियों को यह पीडा है । ऋतुकाल में अत्यन्त शीतल जल का व्यवहार, आहार का अनियम अत्यन्त अधिक सहवास, सहवास के पीछे जल का व्यवहार न करना स्त्री इंद्रिय को सदा विना साफ किये रखना प्रस्राव के द्वार और प्रस्राव के यन्त्र में किसी प्रकार की पीडा इत्यादि अनेक कारणों से यहरोग उत्पन्न होता है । प्रथम यह पीडा उत्पन्न होनेपरही निर्मल वायु से मन, सहवास की अति अधिकता का त्याग [एक वारही वन्द करना भी उचित नहीं है] जिस से इन्द्रिय उत्तेजित होसके, इस प्रकार के कार्य से दूर रहना, नित्य प्रात स्नान करना, इन्द्रिय को

जब ऋतुकाल में रक्तपात के कारण दुर्बलता बोध हो, उसी समय जानना होगा कि तुमको पीड़ा हुई है, तभी से शरीर का यत्न न करने से फिर यह पीड़ा इस प्रकार का भयानक आकार धारण करती है कि जीवन में संशय होजाता है, यह पीड़ा अनेक प्रकार और अनेक भाव से उत्पन्न होसकती है।

यह पीड़ा अनेक कारणों के वश होती है, सहवास की अधिकता भी इस का एक प्रधान कारण है। ऋतुकाल में शीतल जलका लगने देना, रात्रि में जागना, शरीर पर अत्याचार इस प्रकार बहुत कारणों से यह पीड़ा उत्पन्न होती है। इस पीड़ा के होने पर प्रति दिन प्रातस्नान, लघुद्रव्य आहार सहवास एक बारही बंद करना और थोड़ा २ परिश्रम करने का प्रयोजन है। जिस समय रक्तपात होताहो तो, भीत न होकर स्थिर होकर शयन करना चाहिये, स्त्रीकी इन्द्रिय में बरफ रखने से उपस्थित रक्तपात बंद होसकता है इस के उपरान्त नीचे लिखी हुई अवस्थानुसार औषधीका व्यवहार करनेसे पीड़ा आरोग्य होसकती है, ।

यदि हठात् कोई भारी वस्तु उठाने के कारण, परिश्रम के कारण वा गिर ने के कारण रक्तपात हो तो उसको "आणिका" खूब लाल रक्तपात होता हो; नेत्रों से कम दीखता हो, पिसाबके द्वारपर जलन होती हो तो "स्याबिना" काले वर्ण का जमा रक्तपात होता होतो "क्रोकास,, यदि शरीर झन २ करे और भयानक रक्तपात हो तो "इपिकाक,, का सेवन करै यदि ऋतु काल में अधिक रक्तपात होकर रोगी को प्रदर होतो उस को "बपालकेरिया,, का इस्तेमाल करना चाहिये।

साधारण व्याधि ॥

प्रदर ।—(ल्यूकरियोरिया) यह पीडा स्त्रियों को सब समय में ही होसकती है । २ । ३ तीन वर्ष की अवस्था वाली बालिका कोभी यह पीडा होते देखा जाता है, और साठ वर्ष की अवस्था वाली वृद्धी कोभी होती है स्त्रियों को जितने दिन तक ऋतुहोती है, तबतक इसपीडाका होना अधिक संभव है । स्त्री की इन्द्रिय और गर्भस्थली में किसीप्रकार की सूजनहोने से इस स्थल में जो अति कोमल चर्म है (म्यूकस मेमब्रेन) उसमें एकप्रकारका घावहोताहै, और इस घाव से तरल एकप्रकार का पदार्थ निकलता रहता है, कभी कभी यह तरल पदार्थ (हरिद्रा) वा सब्ज वर्ण का होता है कभी घना और कभी पतला होता है, कभी २ अत्यन्त मन्द गन्धयुक्त होता है । सदाही तरल पदार्थ इसीप्रकार निर्गत होता रहता है । प्रथमही प्रथम इस के द्वारा शरीर की किसी प्रकार हानि नहीं होती, फिर क्रमसे जितनी पीडा की बृद्धि होती है उतनाही स्वास्थ नष्ट होता है, दुर्बलता बोध होती है, अग्नि मन्द होती है, मस्तक का घूमना प्रारम्भ होता है, इस पीड़ा को स्त्रियें प्रथम कुछ न समझ कर पीछे इतना कष्ट पाती हैं, ज्ञात होता है इस देशकी सौ स्त्रियों में सत्तर स्त्रियों को यह पीडा है । ऋतुकाल में अत्यन्त शीतल जल का व्यवहार, आहार का अनियम अत्यन्त अधिक सहवास, सहवास के पीछे जल का व्यवहार न करना स्त्री इंद्रिय को सदा बिना साफ किये रखना प्रस्राव के द्वार और प्रस्राव के यन्त्र में किसी प्रकार की पीडा इत्यादि अनेक कारणों से यहरोग उत्पन्न होता है । प्रथम यह पीडा उत्पन्न होनेपरही निर्मल वायु से घन, सहवास की अति अधिकता का त्याग [एक वारही बन्द करना भी उचित नहीं है] जिस से इन्द्रिय उत्तेजित होसके, इस प्रकार के कार्य से दूर रहना, नित्य प्रात स्नान करना, इन्द्रिय को

दुर्बलता (कलोरोसिस) यह पीडा ऋतु के उपरान्त सहवास बन्द रहने सेही अधिक होने की सम्भावना है * शरीर के समस्त अंगों को नियमानुयायी चलानें से आहारादि नियमित करनें से और स्वास्थ की ओर दृष्टि रखने से यह पीडा कभी नहीं होती, यदि हो तो औषधि व्यवहार न करके जिस से शरीर में बल हो और शरीर स्वस्थ रहै ऐसा आहार और इसी प्रकार का कार्य करना कर्तव्य है। यह सब विषय गुप्त न रखने से ढककर न रखने से आधी एक पीडा और नहीं होसकती। पीडा होने पर प्रथम स्वयं यत्न करकै उस पीडाके दूरकरनेकी चेष्टा करनीचाहिये उससे भी यदि नितान्त सब न जाय तो तत्काल डाक्टरसे परामर्श करनी चाहिये ॥

॥ तीसराभाग समाप्त ॥

* (संयुक्त पदार्थ विद्या के तत्व देखो)
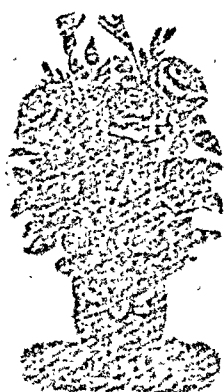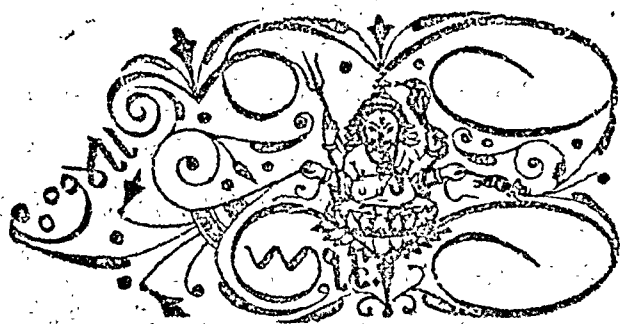
॥ श्रीगणेशायनमः ॥

कोकशास्त्र

चौथा भाग ॥

प्रसूति ॥

जन्मप्रकरण ॥

संतान होने से सबकोही बड़ा आनन्द होता है, किन्तु उस सन्तान का जन्म दान यह कितना भारी कार्य है उसे एकवार विचारकर देखो? पीड़ित और मूर्ख सन्तान जगत् में लाकर उस से जगत् को और समाज को पीड़ित करना यदि महापाप न हो, तो पाप कहना और कुछ भी नहीं है।

ऋतु होने सेही स्त्री सन्तान धारण करने में समर्थ होती है, किन्तु जिसका शरीर और एक जीव धारण करने में और उसको आहार देने में समर्थ नहीं है, उस के सन्तान का होना कुछभी कर्तव्य नहीं है। इस लिये स्त्रियों की अवस्था कम से कम १५। १६ वर्ष की न होने से और शरीर का स्वास्थ अच्छा न रहने से सन्तानोत्पादन करना किसी प्रकार उचित नहीं है, इस स्थल में यहभी एकवार कहदेते हैं कि वर्ष २ में सन्तान का होना भी अतिशय अन्याय है। एक सन्तानका संपूर्ण पालन न होते २ और एक आहारका संस्थान करना मनुष्य के शरीर में सम्भव नहीं है। कम से कम पांच वर्षके बीच में किसी को भी दो सन्तान उत्पन्न करना कर्तव्य नहीं है इसप्रकार सन्तान का जन्म होने से एक जीवन में आठ रूपस्वभाव और सुन्दर सन्तान उत्पन्न होसक-

ती है । जिसकी अवस्था अच्छी नहीं है उस को तो सन्तान उत्पन्न करना महापाप है । अनेक कहते हैं " यह सब ईश्वर के हाथ है „ ईश्वर के कुछभी हाथ नहीं है उस ने तुमको बुद्धी दी है विवेचनादी है तुम्हें देखभाल कर अपना कार्य करना चाहिये, तुम पेड़पे से गिरपड़ो और तुम्हारे हाथ पांव टूटजांय तो देखते हैं कि तुम कहोगे " यह सब ईश्वर के हाथ है „ किसप्रकार मनुष्य का जन्म होता है वही जन्मप्रकरण में दिखायागया है । इसके उपरांत जन्म से गर्भस्थली में सन्तान किसप्रकार से वृद्धि को प्राप्तहोती है, वही इससमय लिखते हैं । सन्तान के जन्म के प्रथम दिन से ठीक दशमास दश दिन गर्भकाल है । इससमयके बीच में किससमय सन्तान किस अवस्था को प्राप्त होती है वह हम विख्यात फरासी डाक्टर " नेग्रियार „ साहब के ग्रन्थ से उद्धृत करके लिखते हैं ×

प्रथम जिस दिन स्त्री के शुक्र संग पुरुष का शुक्र संयुक्त हुआ उस दिन से सात दिनतक गर्भस्थली में कुछ है या नहीं यह ज्ञात नहीं होता आठवें दिन गर्भस्थली में स्वच्छ एक प्रकार का पदार्थ देखा जाता है । दशवें दिन धूसर वर्ण की अपेक्षा कृत अल्प स्वच्छ कुछ २ दीखता है कुछ आकृति उसकी है या नहीं, दिखाई नहीं देती तेरहवें दिन एक द्रव्य की समान पदार्थ देखा जाता है इसके भीतर एक जलीय पदार्थ है, उस जलीय पदार्थ के भीतर देखने से पाया जाता है कि (बिन्दु) की समान एक द्रव्य भासता है । इकीसवें दिन इस विंदु का आकार प्राप्त होता है * तीसवें दिन एक कीड़े की समान देखा जाता है, विशेष करके देखनें से अंग प्रत्यंग भी दिखाई देते हैं ४० चालीसवें दिन बालक के आकर की उपलब्धि होती है । अंग प्रत्यंग जो जगते हैं, वह जाने जासके हैं । दो महीने में बालक के सभी अंग उपस्थित होते हैं । चक्षु के स्थान में काला बिन्दु उत्पन्न होता है, यही क्या नेत्रों के बिन्दो के चिन्हों की भी उपलब्धि होती है मस्तिष्कका भी उत्पन्न होना जाना जासकता है । तीनमहीने में बालक में समस्त अंग प्रत्यंग प्रस्तुत होते हैं । चक्षु, कर्ण, नासिका, दिखाई देती हैं शरीर के भीतर भी अनेक इन्द्रियादिक उत्पन्न होती हैं । चौथे महीने में मस्तक से लेकर अन्य २ सब अंग वृद्धिको प्राप्तहोते रहते हैं, पांचवें महीनेमें बालक की

---

* आरिष्टल ने कहा है इस समय इसका " पिपीलिका " (चैंटी) की समान आकार होता है ॥

× इसमद्दाई जो डाक्टर जे. डी. नेग्रीयार एम. डी ने लिखा है और तर्जुमा डा. सिडनी होच ए. एम. एम. डी ने किया है वह देखो—

अतिशय वृद्धिलक्षित (दीखती) होता है। छठे महीनें में वाल होतेहैं पुरुषांग, वा स्त्रीअङ्ग स्पष्टदिखाई देनेलगता है सातवें महीने में वालक प्रायः सम्पूर्णता को प्राप्त होता है, इस समय जन्म लेनेसे भी वालक जीवित रहसकता है। आठवें महीने में वालकके अंग प्रत्यंग और भी सम्पूर्णताको प्राप्त होते हैं। नौ महीने वालक के सभी अंग प्रत्यंग सम्पूर्णताको प्राप्त होकर वालक स्वाधीन भावसे अपने जीवन की रक्षा करनेमें सब प्रकार से समर्थ होजाता है॥

नौ महीने के उपरान्त सन्तान का होना सम्भव है। इस अवसरमें सन्तान होनें से किसी प्रकारकी हानि नहीं है॥

किस प्रकार मनुष्य गर्भस्थलीमें वृद्धिको प्राप्तहोता है वह अवभी भलीभांति स्थिर नहीं हुआ, तौभी सवही कहते हैं कि पुरुष का शुक्र (स्पर्मयटोजोआ) स्त्री के शुक्र से (ओवन) सम्मिलित होनपर माता उसी सम्मिलित शुक्र से समुत्पन्न जीव को अपने रक्तद्वारा पोषण करती है। अतएव मनुष्य के शरीरमें जो कुछ है वह माताके शरीर के रक्तसे उत्पन्न है। इस लिये संतान और जननि की आकृति में प्रभेद होनेपर भी पदार्थ का प्रभेद अति अल्प है माता के शरीर से वालक में रक्त जाकर किस प्रकार वालक को क्रम से पुष्ट करता है, वही इस समय दिखाते हैं। हम जो आहार करते हैं उस से जिसप्रकार रक्तवनकर शरीर पुष्ट होता है वालक का यह कभी नहीं होसकता, कारण कि वालक के वह सव यंत्र वहुत पीछे सम्पूर्णता को प्राप्त होते हैं। वालक हमारे मतसे मुख के द्वारा आहार करै यह कभी संभव नहीं है। सभी जानते हैं कि वालक की नाभि से एक नाल वाहर निकलता है, उस नाल के द्वाराही वालक के शरीर में माता का रक्त जाता है अतएव रक्त निर्मल होने के लिये जिनसव कार्योंका प्रयोजन है उन कार्योंकी वालक में आवश्यकता नहीं है क्योंकि वालक एकवारही रक्तपाता है। माता का रक्त वालक में किसप्रकार जाता है, वही इस समय दिखावेंगे। जो नाल वालककी नाभिसे वाहरहोता है, वह माताके गर्भमेंस्थापित फूलके संग संयुक्त है, यह फूलरक्त सोखकर नालके द्वारा वालक के शरीरमें उसको पहुंचाता है, माताके आहार विहार कार्यादि के ऊपर जो वालकका जीवन सम्पूर्ण निर्भर करता है, उसके ही दिखाने को यह सव लिखागया *

---

* जिसको यह सव विषय विशेष रूप से जानने की इच्छा हो वह डाक्टर कार्पेन्टर की फिजिओलजी देखे॥

गर्भावस्था ॥

इस समय गर्भावस्था में प्रसूति को क्या करना चाहिये वही दिखाया जायगा । किन्तु गर्भ है वा नहीं; यह प्रथम ही जानना चाहिये इसी लिये गर्भ के क्या लक्षण हैं ? वही पहले दिखाते हैं ।

गर्भलक्षण ।— ऋतु का बंद होना गर्भ का एक लक्षण है । किन्तु अत्यन्त शीतलता वा जल लगने से भी ऋतु बंद होसकता है और भी अनेक कारणों से ऋतु बंद होजाती है । देखा गया है कि अनेक स्त्रियों को गर्भावस्था में भी ऋतु हुई है । * प्रायः साधारण ही देखने से ज्ञात होता है कि गर्भ होने पर भी २ । ३ मास पर्यन्त ऋतु होती है ।

तलपट की आकृति का बढना भी एक लक्षण है, किन्तु यह भी जो समय २ की पीड़ा के वश बढ़ती है, इस को अनेक चिकित्सक (डाक्टर) प्रमाण करगये हैं । और तलपट की आकृति बढने परभी तीन महीने के मध्य में कुछभी नहीं बढती पीछे बढ सकती है ।

गर्भ होनेपर दो वा तीन महीने में स्तन वृद्धि को प्राप्त होते हैं और स्तनों में कुछ २ वेदना वाध होती रहती है (स्तनवृन्त) दोनों स्तनों का घेरा बड़ा और काला होता है, दोनों स्तनों के चारों ओर जो दाग हैं वह बड़े और गाढे रंग को प्राप्त होते हैं । किन्तु यह चिन्ह सबके गर्भस्थलो की पीड़ा होने परही होतेहैं । स्तन में दूधका होना भी निःसन्देह गर्भका एक चिन्ह है, परन्तु अनेक वूढी और वालका के स्तन में भी दूध देखा जाता है ॥

प्रातकाल के समय शरीर का झन झन होना वा वमन करना भी गर्भ का एक लक्षण है । यह शरीर का झन २ करना जो गर्भ होने पर केवल प्रातसमय ही हो; ऐसा नहीं है, वरन अन्य समयमें भी होता है । किसी २ के वही शरीर का झन २ करना छः सप्ताह से तीन महीने तक होता है और नौ दश महीने के समयभी होता है । ०

जब निश्चय विदित होजाय कि गर्भ रहगया है तो तुम्हारे शरीर के और मनके स्वास्थ के ऊपर जो और एक जीवन निर्भर करता है । यह एक मुहूर्तके लिये भी भूलना नहीं चाहिये पहले स्वास्थकी ओर जितनी दृष्टि रखती थीं, इस समय उस से शतगुणी अधिक रखनी होगी ।

---

* डाक्टर वडलोक और डियस कहते हैं कि किसी २ स्त्री को केवल गर्भावस्था मेंही ऋतु हुई है ॥

० (गोल्डस्मिथ)

तुम्हारे मनसे मन और शरीर से शरीर उत्पन्न होता है, इस समय बालक जैसाहोकर उठैगा, पीछे शत सहस्रबार अच्छी शिक्षा देनेपर भी वह दूसरी प्रकार का नहीं होगा। गर्भ की अवस्था में मनका अनेक प्रकार से उत्तेजित होना संभव है, जिस से किसी प्रकार यह चलायमान नहो वही करना चाहिये। इसी लिये सावधान रहने का प्रयोजन है। मनकी इच्छा को तृप्त न करनाभी अन्याय है गर्भकी अवस्था में सावधान रहने से किसी पीड़ा के होने की संभावना नहीं है, और यदि होभी तो औषधि का शीघ्र व्यवहार करना उचित नहीं है विशेषकर जुलाबही औषधि है, यदि बहुतही कोई पीड़ाहो तो अच्छे चिकित्सक की औषधि का सेवन करना चाहिये।

गर्भावस्थाकी पीड़ा॥

इन सब कारणों से हम गर्भावस्था की पीड़ा के लिये किसी औषधी की व्यवस्था इस पुस्तक में लिखनेंके साहसी नहीं हैं। इस प्रकार की अवस्था में भली भांति न देखकर औषधी का सेवन करना अत्यन्तभारी अन्याय कार्य है पुस्तक में पढकर औषधी का सेवन वा व्यवहार करना अन्य समय चल सक्ता है, परंतु गर्भ की अवस्था में कभी नहीं चलसक्ता हम संक्षेप से केवल पीडा के नाम लिखते हैं, पुस्तक असम्पूर्ण रहने के कारण लिखने में कटिबद्ध होते हैं, नहीं तो नहीं लिखते कारण कि सावधान रहनें से पीडा क्यों होगी। और इन सब पीड़ाओं के होनेंपर क्या करना चाहिये? वही लिखते हैं।

मानसिकव्याधि— (मयनूलांडिसआरडा) गर्भ होनेंपर बहुतोंके मनमें भय, चिन्ता, और चंचलता अत्यन्त प्रबल होती है। संतान के कल्याणार्थ इन सब मानसिक उत्तेजनाओं को दूर करना अतिशय कर्त्तव्य है दयामय परमेश्वर सदाही सब के ऊपर अपना करुणामय हाथ पसारे हुए रहते हैं; उन्हीं के ऊपर निर्भय रहो, ऐसा करनेंसे फिर कोई भय न रहेगा जिस से मन सदा प्रफुल्ल रहै, वैसाही कार्य करो, प्रमुदित रहो, भय शंका एक बारही दूर करदो स्वामी को जानना उचित है कि जिस कार्य, जिस द्रव्य, और जिस विषय में स्त्री प्रसन्न रहै वही करना चाहिये। पहले जितना स्त्री को प्यार करतेथे इस समय उस की अपेक्षा शतगुण अधिक प्यार करो। एक मनुष्य का जन्म सन्निकट है, यह किसी समय नहीं भूलना चाहिये।

वमन—प्रथमही लिखागया है कि वमन भी गर्भ का एक विशेष

लक्षण है । गर्भ होने सेही प्रतिदिन प्रात समय शरीर अतिशय झन झन करता रहताहै. आहारमें एकवारही इच्छा नहीं रहती और आहार के उपरान्त सर्वदाही वमन होती रहती है । यह किसी प्रकार की पीड़ा नहीं है तौ भी इस वमन से यदि अत्यन्त क्लेश हो तव नीचे लिखे प्रकार से कार्य करनेपर वमन पहली अपेक्षा से वहुत कमहो जायगी। सर्वदा मनको प्रफुल्ल रक्खै, मनको किसी प्रकार उत्तेजित न होने दे । वहुत सवेरी सोकर उठे और अधिक रात्रि में जागरण भी त्याग करना चाहिये । शरीर के झन झन करने पर वरफ पान करने से शरीर का झन झन करना कम होता है, किन्तु गर्भ की अवस्था में अधिक वरफ का पीना किसी मत से भी कर्त्तव्य नहीं है अधिक वरफ पीनेसे गर्भस्राव होने की संभावना है ।

क्षुधामान्द्य ।—(डिसपिपसिया) जिस कारण गर्भ होने पर वमन होतीहै उसीकारण क्षुधा मांद्य आहार में घृणा और अरुचि इत्यादि होती है । गर्भहोने पर अनेक प्रकार के द्रव्य आहार करने की इच्छा उत्पन्न होती है, जो सहजही न पचै ऐसा द्रव्य किसी प्रकार भी आहार करना उचित नहीं है, आहार के लिये जो इच्छा हो उस का अपरितृप्त रखना भी ठीक नहीं है, आहार के विषय में अत्यन्त सावधान होकर चलने से क्षुधा मांद्य इत्यादि पीड़ा नहीं होती गर्भ की अवस्थामें किसी प्रकार औषधी के व्यवहार करने की किसीको परामर्श देने का हमारा साहस नहीं है ।

कोष्ठवद्ध ।—(कन्स्टी पेशन) गर्भ कालमें ही प्रायः यह पीड़ा होती है, आहारका अनियम ही इसका प्रधान कारण है । अर्श (बवासीर) भी समय २ पर होता है, स्वास्थ की ओर दृष्टि रखने से यह पीड़ा नहीं होती, और हुई भी तो प्रबल नहीं होसकती तो भी यदि नितान्त ही हो; तव किसी चिकित्सकको बुलाना चाहिये ।

पेटकी पीड़ा ।—(डायरिया) गर्भ की अवस्था में पेट की पीड़ा सामान्य होनें परभी तिरस्कार का विषय नहीं है, पेट की पीड़ा होनेपर आहारकी ओर विशेष दृष्टि रखना चाहिये ।

जिस आहार से पेट में पीड़ा होने की किंचुमात्र भी संभावना है वह आहार किसी प्रकार भी भक्षण नहीं करना चाहिये । और कुछ आहार न करके उत्तम मकई के चावल का पथ्य भोजन करे ।

दन्तवेदना ।—(टुथेक) गर्भ होनेपर बहुतों को यह पीड़ा होती है । गर्भ के प्रथम महीने से पांच महीने तक यह रहती है । सदा दांतोंको साफ रखना ही इसकी औषधि है ॥

खांसी।—(कफ) गर्भ होने पर खांसी भी होती है। जब यह खांसी हो तब जरासी मिशरी वा कन्द मुख में रखने से खांसी भी कम होती है ॥

निश्वास में क्लेश बोध (डिसनोया) आठ नौ महीने के गर्भ काल में इस पीड़ा से बहुतों को अत्यन्त कष्ट प्राप्त होता है, ऐसा होने से विश्राम करना अति आवश्यक है। आहारादि के ऊपर भी दृष्टि रखने का अत्यन्त प्रयोजन है। कमर कसकर वस्त्र का पहरना किसी प्रकार भी उचित नहीं है ॥

गर्भस्राव।—गर्भ होने पर अत्यन्त सावधान न रहने सेही गर्भस्राव होने की संभावना है। गर्भ में स्थित बालक के न मरने से गर्भस्राव नहीं होता। मृत्यु होनेसे ही तत्काल गर्भ से संतान निक्षिप्त होती है। यदि नहो तो चिकित्सक को बुलाना चाहिये। गर्भ के पहले महाने से सात महीने तक गर्भ पात होसकता है ये जननीके लिये शंका जनक और विपद संकुल है सो कहा नहीं जाता।

गर्भस्राव का कारण।—पिताके दोष से ही अकसरगर्भस्राव होता है। पिताको किसी प्रकार की कठिन पीड़ा होने से वह पीड़ा संतान में जाकर संतान के जीवनका नाशकर के गर्भस्राव को प्रकट करसकती है। पिताकी अवस्था अल्प होने से भी गर्भस्राव होने की संभावना है। गर्भ की अवस्था में अत्यन्त अधिक सहवास होना भी गर्भस्राव होने का एक प्रधान कारण है। माता के शरीर की अस्वस्थता के कारण गर्भस्राव बहुधा होता है यदि शरीर पर अत्याचार अतिशय किया गया हो (अर्थात् रात्रि में बहुत जागना अतिशय आहारादि करना अत्यन्त श्रमादि अत्यन्त परिश्रम करना अतिशय अग्नि के निकट रहना) तो गर्भस्राव का कारण होसकता है। हठात् गिरजाना, वा हठात् अतिशय भीत होना, वा अतिशय आमोदित होना भी गर्भस्राव का कारण है गर्भस्राव एकबार होनेपर बहुतबार होसकता है, इस लिये जिन सब कारणों से गर्भस्राव होता है उनको पहले दूरकरना चाहिये सदाही सावधान रहने का प्रयोजन है ॥

प्रसव ॥

क्रम से दशमास पूर्ण होनेपर सन्तान के जन्म होनेका समय आता है। तब इसके लिये तुमको प्रस्तुत होना चाहिये. इस समय और करनेका प्रयोजन है उस को हम सरल भाषा और संक्षेप से लिखने की चेष्टा करते हैं ॥

सूतिका गृह ।—सूतिका गृह एक अभेद गृह होना चाहिये, जिस तिस को उसके भीतर प्रवेश करने देना युक्ति संगत नहीं है उसका कहनाही क्या है ! घर बड़ा होना चाहिये जिससे वायु अच्छी प्रकार चलसके, जिससे घर शुष्क हो और जिससे घर में दुर्गन्ध न रहने पावे, इस प्रकार का कार्य करना कर्तव्य है । सूतिका गृह में अधिक कोलाहल होने देना किसी प्रकार भी युक्ति संगत नहीं है । प्रसूति के लिये शय्या जितनी कोमल होसके, उतनी ही अच्छी है । वस्त्रादिक उसके सदाही साफ रखने का प्रयोजन है ॥

प्रयोजनीय द्रव्य ।—सूतिका गृह के प्रयोजनीय सब द्रव्यों का पहले ही स्थान में रखना कर्तव्य है । गर्भ वेदना के उपस्थित होनेपर दौड़ धूप करना कितना विपद जनक कार्य है सो कहनहीं सकते । इस लियेही गर्भ होनेपर प्रसव पर्यन्त सबकोही बालक और अपने आवश्यकीय द्रव्यादि प्रस्तुत करने में नियुक्त रहने का विशेष प्रयोजनहै

वेदना ।—गर्भ की वेदना होने परही धात्री (दाई) को बुलाना चाहिये । मूर्ख और अशिक्षिता दाई के हाथ में ऐसे समय में जीवन का छोड़ना यह कितना भयानक कार्य है उसका क्या किसी को समझाना होगा ! संतान प्रसव को स्त्रियों के लिये पुनर्जन्म कहने से अत्युक्ति नहीं होती, स्त्रीमात्रही को थोड़ा बहुत दाई होना चाहिये * ।

गर्भ वेदना से किसी को भी क्लेश होने की बात नहीं है । हमको विश्वास है कि स्वाभाविक अवस्था रहने से और परम दयालु ईश्वर के ऊपर निर्भर करके रहने से गर्भ वेदना का कष्ट बहुत ही अल्प होता है । अक्सर देखाजाता है कि निर्धन के घर प्रसव का क्लेश थोड़ाही होता है । जो गर्भ की अवस्था में रीति के अनुसार परिश्रम करसकें, आहारादि नियमानुयायी करें, और शरीर को स्वस्थ रखसकें, उनको गर्भ वेदना का क्लेश यदि हो भी तो अत्यन्त थोड़ा होता है । इस लिये गर्भ होनेपर डरनेकी आवश्यकता नहीं है । सावधानता और यत्न आवश्यकहै ॥

संतानका जन्म ।— संतान होने पर संतान और उसकी माता दोनों का यत्न समान करना होताहै । बालक उत्पन्न होते ही यदि रोवे; तो फिर कोई भय नहीं है यदि न रोवे तो नीचे लिखे कार्य करने से बालक के श्वांसका आना जाना प्रारम्भ होसकता है । मुखके भीतर राल

---

* डाक्टर यदुनाथ मुखोपाध्याय प्रणीत " धात्री शिक्षा " स्त्रियों को धात्रीशिक्षा सीखनेकी उपयुक्त पुस्तक है ॥

रहने के कारण बहुत समय तक वालक क्रन्दन (रोना) वा निश्वास प्रश्वास नहीं छोड़सकता । इसलिये जिस समय वालक का जन्म हो तिसी समय उसके मुखके भीतर अंगुली डालकर राल को बाहर निकालना चाहिये। इसके पीछे मुख पर शीतल जलका छींटा देना उचित है। इस से भी यदि वालक का निश्वास प्रश्वास नहो तो वालक को गरम जल से स्नान करादेना चाहिये। निश्वास प्रश्वास न होनेपर भी हताश्वांस नहीं होगा। आधे घंटे वाद भी बालक का निश्वास प्रश्वांस होते देखागया है।

प्रसव के पीछे प्रसूति को अतिशय शीत बोध होता रहता है, तत्काल उस को गरम वस्त्र से ढककर रखने का प्रयोजन है। वायु से शरीर को बचाये न रखना किसी प्रकार से कर्तव्य नहीं है। किसी प्रकार से भी प्रसूति को चलने फिरने देना वा कोई काम करने देना उचित नहीं है। प्रसवके उपरांत तत्काल वस्त्रादि परिवर्तन कर (बदलकर) साफ वस्त्रादि पहराकर प्रसूति को शयन कराये रखने का विशेष प्रयोजन है। *

जिस समय माता विश्राम करै तिस समय वालक को साफ करके स्नान कराकर माताकी गोद में देना उचित है। वालक का मुख देख कर माताका सब क्लेश दूर होजाता है। माताका स्नेह ऐसाही धनहै।

वालकके स्तनपान करना आरम्भ करने से उसके श्वांस आने जाने की क्रिया तेज होती है। किन्तु यदि स्तन पिलाने से माताको क्लेश हो तो स्तन पीने देना उचित नहीं है। इससे रक्तपात होना अत्यन्त संभव है। ×

---

* रक्तपात के वश शरीर एक वारही "नरम" होजाता है। इस लिये प्रसूतिको घर मेंही रखने का विशेष प्रयोजन है। हमारे देश में "ताप" देनेकी प्रथा चलित है। यदि नियमानुसार ताप व्यवहार कराजायतो प्रसूति शीघ्रही सबलहोजायगी। किन्तु अधिक तापका व्यवहार किसीप्रकारभी उचित नहीं है विशेष करके प्रसूति का गृह में धुआंहोने से वालक और वालककी माता दोनोंकेही स्वास्थ्यकी विशेषहानि होती है।

× नितांत बाधा नहोनेसे वालक को और किसीका स्तनपीने देना कर्तव्य नहींहै और माता यदि पीडिता होतो किसीप्रकार उस के स्तनका दुग्धपान कराना उचित नहीं है, इसप्रकारहोने से किसी सुस्थ शरीरवाली स्त्रीका दुग्ध पिलाना चाहिये॥

संतान होनेपर बहुत स्त्रियें माताके देखने के लिये आती हैं । बहुत सी आनकर माता के निकट शोरकरती हैं, जिस से उसका शरीर और मन दोनों पीड़ित होसकते हैं ।

सूतिकाकाल।—जबतक शरीर भली भांति दृढ नहो और जबतक शरीर सबल नहो और जबतक बालक कुछ दृढ़ नहो; तबतक प्रसूति को सूतिका गृह में रहने की पृथा है वहअत्यन्त अच्छी है । एक महीने में जननी और बालक बहुत सुस्थ होसकते हैं । यह केवल एक महीने आहार के ऊपर जो जननीका जीवन निर्भर करता है, इसी प्रकार नहीं है वरन सन्तान का जीवन भी सम्पूर्ण निर्भर करता है । इसका सब वर्णन पीछे लिखाजायगा । सूतिका गृह में जितने दिनतक रहना होता है तवतक अत्यन्त साफ रहने का प्रयोजन है । इस समय थोड़े धनका लोभ कर मैले वस्त्रों से रहना कितना अन्याय है, सो कह नहीं सकते।

प्रसूति की पीड़ा ॥

प्रसव के उपरान्त प्रसूतिका शरीर जो अत्यन्त सावधानी से रखना होता है वह ऊपरही लिखागया । अब प्रसूति की एक दो पीड़ा का वर्णन संक्षेप से लिखते हैं ॥

प्रसव के उपरान्त वेदना (आफ्टर पेन्स) प्रसव के उपरान्त गर्भस्थली पहली अवस्था में प्राप्त होने के लिये चेष्टा करती है; और इसी कारण अतिशय वेदना बोध होती है । यदि उपयुक्त भांति से तापका व्यवहार कियाजाय, तो वह वेदना होनेपर भी प्रबल नहीं होसकेगी । यदि अधिक हो; तो एक बूंद " सिकेल " प्रत्येक घण्टे सेवन करने से पीड़ा कम होती है ॥

पिशाब का बंद होना ।—प्रसव के उपरांत पिशाब दो तीन दिन तक बंद रहता है । यदि बंद हो तो किसी अच्छे चिकित्सक को बुलाना चाहिये ।

गर्भस्थली से स्राव (लोकिया) प्रसव के उपरान्त गर्भस्थली से जलीय स्राव होता रहता है । यह जननी के लिये विशेष उपकारक और प्रयोजनीय है । यदि यह सहसा बंद होजाय तो विपद की आशंका होती है । यदि ऐसा हो तो बहुत शीघ्र किसी अच्छे चिकित्सक से परामर्शकरना चाहिये ॥

स्त्री इन्द्रियकी वेदना।— प्रसव के उपरान्त इस वेदनाका न होना ही एक आश्चर्य की बात है,। यदि वेदना होने पर दो कच्चे पैसे भर "क्लेराइडअफसोडियम" * एक पावभर जलमें मिलाकर स्त्री इन्द्रिय को धोवै और "आर्शोनिक" सेवन करनेसे बहुत उपकार होसकता है।

दुग्धोत्पति जनित ज्वर (मिल्कफीवर) प्रसव के उपरान्त बालक के आहार के लिये माता के स्तनों में दुग्ध उत्पन्न होता है। प्रथम एक प्रकार का घना पदार्थ स्तन से बहिर्गत होता है, यह बालक के पक्षमें विरेचक का कार्य करता है। बहुधा तीसरे दिन स्तनों में वास्तविक दूध आता है, तबस्तन वृद्धि को प्राप्त होते हैं तृष्णा और शीत बोधहोता है, मस्तक में वेदना होती है तिस पीछे अत्यन्त पसीना निकलता है यह ज्वर दोतीन दिन तक रहता है स्तन शमय २ पर किसी के इतने वृद्धि को प्राप्त होते हैं कि अतिशय वेदना बोध होती है और यही क्या हाथ के झुकानेसे भी यंत्रणा बोध होती है। बालक को स्तनका दूध पीने देने पर यह क्रम से आपही जाता रहती है। यदि स्तन में अधिक दुग्ध आनकर जमता हो, तब जिस प्रकारहो कुछेक दूधको गलादेना चाहिये। जो ऊपर लिखा है उससे करनेसेभी यदिस्तनों में अतिशय अधिक दूध आता होतो "एकोनाइट" और ब्राइओनिया पर्य्याय के क्रमानुसार सेवन करने से उपकार होसकता है

कभी २ उस दूधकी अल्पता भी होती है। यदि ऐसा होतो बलकारक द्रव्य का आहार करना चाहिये। जितनेदिन बालक स्तन पान करै तबतक बालक का जीवन माता के आहार के ऊपर निर्भर करता है। माता जो द्रव्य भक्षण करती है स्तन का दूध उसके अनुरूपही होताहै * इस समय में संतान को पीडा माता के कारण होती है। अतएव माता के स्वास्थ रक्षा करने से बालक को और किसी प्रकार की पीड़ा नहीं होती। बहुत समय देखागया है कि माता के औषधी सेवन करने से बालक की पीड़ा आरोग्य हुई है॥

---

* डा. लैवरेजका सालूशन आफ, क्लोराईड आफसोडियम।

* इस विषय में ज्ञातहोता है किसीकोभी संदेह नहीं है माता यदि "लहसन" आहार करैतो स्तनके दूध से लहसनकी गंध बाहरहोती है, यह प्रत्यक्ष देखने में आयाहै।

जननी.

शिशुपालन ॥

बहुत शीघ्र प्रसूति को बालक के विषयमें जो करनें की आवश्यकता है वह पहलेही एक प्रकार लिखागया है, अब सूतिकावस्था में क्या करना चाहिये वही लिखते हैं ॥

ताप !—बालक के लिये तापभी एक अति आवश्यकीय पदार्थ है। तापके क्रम से बालक दृढता को प्राप्तहोगा; शरीर के रक्तकी चाल तेज होगी। और श्वास प्रश्वास (श्वास का आना जाना) उपयुक्त प्रकार से होता रहैगा। इस लिये प्रति दिन सन्ध्याकालमें सरसों के तेल से प्रज्वलित दीपकपर हाथ उत्तप्त कर बालक के शरीर के सब स्थानों में ताप देना चाहिये ॥

स्नान।—बालक को नित्य स्नान कराना चाहिये। बालक का चर्म जिससे साफरहै वही करना उचितहै। स्नान होगा ऐसा समझकर बालक को बहुत देरतक जल में रखना किसीप्रकार उचित नहीं है। स्नाव के पीछे बालकका अच्छी रीतिसे गात्रमार्जन करना उचित है। शीतकाल होने पर कुछेक उष्ण (गरम) जलसे स्नान कराना चाहिये। बालक २। ३। महीनेका हो तौ सरसों का तेल शरीर से मर्दन करना अतिशय उपकारक है ॥

आहार।—बालक का प्रधान आहार स्तनका दूध है जो पहलेही लिखचुके हैं स्तनमें दूध न होने से बालकका जीवित रहना एक प्रकार असंभव है किन्तु अत्यन्त स्तन पिलाने से जननी का स्वास्थ भंग होसता है, यही नहीं वरन बहुतसी उन्मत्त होजाती हैं × स्तन में किसप्रकार की पीड़ा होने पर बालक को स्तन नहीं पिलाना चाहिये स्तन पिलाने का समय नियत करना कर्तव्य है। इस से देखोगे कि बालक ठीक उसी समय में जागता है अतएव बालक और जननी दोनों के विश्राम में विघ्न न होगा बालक के रोतेही उसको स्तनदेना किसी प्रकारभी उचित नहीं है इससे बालक को एकप्रकारका कुअभ्यास होजायगा, और एक दूध न पचते २ और दूधके पीने से पेट में जलन आरंभ होगी। रात्रि के समय निद्रा अवस्थामें कभी स्तन नहीं पिलाना चाहिये। इस प्रकारकी अवस्था में स्तन

× (डा. टेलरसिथ आन इनसेनीटी)

पीकर वहुत वालक मरगये हैं स्तन किसी समय वायु में उघड़े रखने उचित नहीं है, इससे स्तन में फोड़े के होने की अतिशय सम्भावना है॥

वालक के तीन चार महीने के होने पर गौ का दूध वा गधी का दूध पिलाया जासकता है। गौ के दूध में जरासा जल और जरासी चीनी मिलाकर सेवन करना चाहिये। वालक को दूध के सिवाय शीघ्र और कुछभी आहार करने देना उचित नहीं है॥

वेश।—वालक का शरीर जो सर्वदा अच्छी प्रकार से ढककर रखना होता है उसका कहनाही क्या है। वालक का शरीर विना ढका रखने के कारणही अक्सर देखाजाता है कि वालक को सर्दी से कष्ट होता है। सूतिका गृह में सर्दी होने से वालक के लिये यह सहजही पीड़ा नहीं है। इस लिये ढीले पतले और साफ कपड़े के द्वारा वालक को सर्वदा ढककर रखना अतिशय उचित है॥

वायु।—वालक जिस से साफ और सुशीतल वायु सेवन करसके इसके करने का प्रयोजन है। वालक इस प्रकार वायुके पाने से हाथ पांव हिलाकर खूब खेलेगा, इससे उसके परिश्रम से उसका आहारीय-द्रव्य शीघ्रही पचजायगा॥

निद्रा।—जन्म के उपरान्त ५। ७। सप्ताह तक वालक को केवल निद्राही आती है। केवल भूँख लगने से उसकी निद्रा भङ्ग होती है, और आहार होने पर फिर निद्रित होजाता है। क्रमसे इसी भाव के प्राप्त होने पर वालक केवल रात्रि को ही सोता है। जब वालक जागता है, ऐसी अवस्था में किसी को किसी समय भी वालक के सन्मुख जाना उचित नहीं है। इस से वालकका भी मन हठात् उत्तेजित होकर उसके स्वास्थ की हानि होसकती है। वालक को थपकोर कर सुलाना अत्यन्त अन्याय है। इससे वालक को एक कुअभ्यासही न होगा वरन वालक के मस्तिष्क (दिमाग) में भी आघात लगसकता है॥

दन्त।—वालकके दांत जमनेका समय बड़ा क्लेश का समय है इस समय में माता अपने आहार की ओर विशेष दृष्टि रक्खे, न रखने से वालक को अतिशय कष्ट प्राप्त होगा। ६ महीने से नौ महीने के मध्य में वालक के दांत निकलने आरंभ होते हैं॥

टीका।—वालक की अवस्था ३। ४ महीने की होनेपरही जितनी शीघ्र हो वालक को टीका देना उचित है। टीका देकर सावधान रखने से सामान्य कुछेक ज्वर होकर वालक फिर स्वस्थ होजायगा।

जो २ लिखागया यह केवल इस गुरुतर विषय का संक्षेप से उल्लेख मात्र है। बालक का पालन करने में माता का प्राण अपने आपही यत्न करैगा, तौ भी मा यदि अपनी विचार शक्ति जरा भी व्यवहार करै तब वह और उस के प्राणों की समान सन्तान दोनोंही सुख और स्वच्छन्दता से रहसकती है॥

बालककी पीड़ा ॥

बालक को पीड़ा सदाही होती है, बालक के मनका भाव देखने में कलेश होने के कारण बालक को पीड़ा की चिकित्सा में इतना कलेश बोध होता है माता जिस प्रकार अपनी सन्तान के मनका भाव समझ सकती है, इसप्रकार और कोई भी नहीं जानसकता, इस लिये ही माता जैसी बालक की चिकित्सा कर सकती है, ऐसी और कोई भी नहीं करसकता। नीचे संक्षेप से बालकों की पीड़ा और उनकी औषधि की व्यवस्था लिखी गई है। आशा करते हैं इस पुस्तक के पढ़ने से अनेक माता अनेक समय में बालक की अनेक कलेशों से रक्षा करसकैंगी। जो सब पीड़ाओं का वर्णन इस पुस्तक में लिखागया है उसके सिवाय अन्य पीड़ा होनेपर भी चिकित्सक को बुलाना चाहिये। क्योंकि इनसब पीड़ाओं की चिकित्सा के लिये बहुत पढ़ा और बहुदर्शी चिकित्सक का होना प्रयोजनीय है॥

नालका सूजना।—नाल काटने के समय असावधानता के कारण यहपीड़ा होती है। ताप देते २ आरोग्य होता है॥

नेत्रों का सूजना।—हठात् नेत्रों में प्रकाश लगने से वा नेत्रों को विनासाफ रखने से यह पीड़ा होती है। सदा नेत्रोंको साफ रखने से और बीच बीच में "एकोनाइट" का सेवन कराने से यह आरोग्य होती है। यदि। प्रकाश देखतेही बालक रोता हो तो "बेलाडोना" इस्तेमाल करै *

रुदन।-चंचलता, और अनिद्रा।—अजीर्णता के वश वा दांत जमने के लिये अथवा अन्य कारणों से यह पीड़ा होतीहै। एक बूंद कफिया,

---

* बालक के लिये होमियोपैथिककी औषधी बहुत अच्छी है बालक को इसका सेवन करने से कलेश नहीं होगा, माताभी इसका व्यवहार करने में शंका न करै।

सेवन करने से यह आरोग्य होसकती है । [यदि मस्तक गरम हो तो "वेलोडोना" इस्तेमाल करै ॥

नासिका का वंद होना । शीतल वायु किसी प्रकार वालक के शरीर में लगने से यह पीड़ा होती है । इन सब विषयों में अत्यन्त सावधान रहने का प्रयोजन है । यदि नासिका शुष्क रहै तो "नक्स-भमिका" यदि नासिका से पानी गिरता हो तो आर्शेनिक का इस्तेमाल करै । यदि यह पीड़ा स्थायी होजाय तो एक सप्ताह तक एक२ वूंद "क्यालकेरिया,, और फिर एक सप्ताहतक "सालफर,, का व्यवहार करना चाहिये ।

स्तनका सूजना ।—वालक का स्तन समय २ पर सूज जाता है । कोई२ मनमें विचार करते हैं कि स्तन में दूध होने के कारणही ऐसा होता है यह सम्पूर्ण भ्रम है । जरासा कपूर तेल में मिलाकर स्तन में लेपकरनेंसे यह पीडा आरोग्य हो सकती है ।

मुखमें स्फोटक ।—वालक के मुँहमें समय२ पर फोड़ा निकलता है । अजीर्ण, अपरिष्कार (वेसफाई) इत्यादि कारणों से यह होता है । सदा वालक का मुख अच्छी प्रकार से धोना चाहिये । स्तन पीने के उपरान्त प्रतिवार माता के स्तनों का धोना भी आवश्यक है "वोरक्स" फोड़े में लगाने से आराम हो सकता है । यदि वालक दूधडाले, पतला मल त्याग करता हो और यदि फोड़े से किसी प्रकार का पदार्थ निकलता हो तो "सालफिडरिकएसिड,, चारघंटे के अन्तर छः 'ग्लविउल' देने से आरोग्य होता है *

व्रण ।—पूर्वोल्लिखित पीड़ा के संग इस पीड़ा का (प्रभेद) स्थिर करना कठिन है । देखतेर व्रण सर्वाङ्गोंमें फैल जाता है, वालक को ज्वर आता रहता है, और क्रमसेही वालक दुर्वल होजाता है अपरिष्कार (वेसफाई) रहना दूषित वायु का शरीर में लगाना शीलनयुक्त घरमें वास और अजीर्णता इत्यादि कारणों से यह पीड़ा उत्पन्न होती है । पहले (सालफिडारक एसिड) देना कर्त्तव्य है, इसके पीछे "व्रमनि,, का इस्तेमाल करै, जब इस औषध के व्यवहारसे उपकार दिखाई दे, और दुर्वलता के सिवाय कुछभी उपसर्ग (रोग) न रहै तब दिन में

---

* वालक के लिये बहुतही अच्छा है क्योंकि यह मीठा है बालक इसको आनन्द से खासकता है ॥

तीन वार (चाइना) देने से दुर्बलता दूर होगी । इस पीड़ाके होनेपर वालक को भूख लगने से ही आहार देना चाहिये ॥

पेटकी वेदना ।—(कौलिक) वालक की इसपीड़ा के कारण माता को अत्यन्त कष्ट प्राप्त होता है । माता के दोषसे ही यह पीड़ा उत्पन्न होती है । जो वालक के लिये कभी उपयुक्त नहीं है वह इस प्रकार का द्रव्य खालेती है वालक को वैसही अजीर्ण होकर तिसी समय पेट में जलन के साथ पीड़ा हो तौ " क्यामोमला „ को इस्तेमाल करना चाहिये ।

कोष्ठवद्ध ।-(कान्स्टीपेशन) वालकों को यह पीडा अतिशय होती है. पानका डंठल गुह्य द्वार पर रखने से वालक शीघ्रही मल त्याग करैगा, और इसी प्रकार दो तीन दिन करने पर कोष्ठवृद्धस्वयंही दूरहोगा यह सब पीड़ा माता के आहार के नियम से ही होती है ।

पेटकी पीड़ा ।—(डायरिया) वालकों को यह पेटकी पीड़ा अतिशय होती रहती है । माताके आहार के दोष से यह उत्पन्न होती है, यह पीड़ा होने पर कोई औषधी वालक को देनी उचित नहीं है । इससे उपकार न होकर अनुपकार होसकता है । तौ भी नितान्त जिस स्थल में औषधी व्यवहार न करने पर पीड़ा आरोग्य न हो तौ इस स्थल में नीचे लिखी औषधियों को व्यवहार करना चाहिये । परन्तु पीड़ाकी अधिकता देखने पर किसी अच्छे चिकित्सक को वुलानाही उचित है । यदि वालकको अतिशय दुर्बलता हो और वालक को अजीर्ण हुआ देखाजायतो " चाइना " देना चाहिये । यदि मल सब्जवर्ण हो तो "क्यामोमिला" देना अच्छा है । यदि दांत निकलने के समय हो तौ क्यालकेरिया का देना उचित है ।

क्रिमी । क्रमी के कारण वालक को अनेक प्रकार की पीड़ा होती है। क्रिमी होने से आहार पर विशेष दृष्टि रखनी चाहिये । प्रतिदिन एक २ वूंद " सिना " का सेवन ही क्रिमी की वहुत अच्छी औषधि है ।

पिसाव का वंद होना । वालक को यह पीड़ाभी कभी २ होती है, यदि जन्म के उपरान्त दो घंटे के वीच में पिसाव न हो तो पिसावके द्वार पर गरम जलमें भीगा कपड़ा रखने से पिसाव होगा । यदि दो घंटे के वीच में नहो तो फिर गरम जल में कच्चा दूध मिलाकर पिचकारी लगाने से पिसाव होसक्ता है इससे भी यदि न हो तो चिकित्सक को वुलाना चाहिये ॥

ज्वर।—यदि वालक को सामान्य ज्वरहो तो "एकोनाइट" और ज्वरके टूटने पर "आर्शोनिक" का व्यवहार करने से ज्वर आरोग्य होसकता है॥

वालक को और जो पीड़ा होती हैं उनकी चिकित्सा अच्छे चिकित्सक के सिवाय और किसी को भी करने देना किसी प्रकार उचित नहीं है, क्योंकि इससे पीड़ा कम न होकर पीड़ा की वृद्धि होसकती है। तुम यदि एकही पुस्तक पढ़कर सव पीड़ाओं की चिकित्सा करसको तो और मनुष्यों का इतने कष्ट से पांच सात वर्ष परिश्रम करके चिकित्सा शास्त्र सीखने का क्या प्रयोजन है! चिकित्सा शास्त्र का सीखना सहज नहीं है, वहुत परिश्रम और वहुत पढ़ने से तव इसकी कुछेक शिक्षाहोगी अतएव कठिन पीड़ा देखनेपर जिसने यह शास्त्र अच्छी प्रकार पढ़ा है उससे ही परामर्श करनी चाहिये जिसके ऊपर जीवननिर्भर करता है किसी से भी उस मे हस्ताक्षेप कराना किसी प्रकारभी उचित नहीं है। तथापि इस विषय में वहुत अनजान रहने से भी काम नहीं चलेगा, विशेष करके स्त्री जाति का। उसको जितना चिकित्सा शास्त्र सीखनें का प्रयोजन है, वही कुछेक इस पुस्तक में मिलाने की चेष्टा की है। स्वदेशीय रमणीगणों के मध्य में कुछेकभी यदि परिश्रम करके चिकित्साशास्त्र में दक्ष होंगी, तौ देशका वहुत कष्ट कमहोगा, कुछेकभी स्त्रियों के चिकित्सक होनेपर स्त्री जाति का आधा क्लेश और दुर्दशा कमहो जायगी॥

माता और संतान

हमारा वक्तव्य (कहना) प्रायः समाप्त होनेपर आगया है। और केवल एक दो वात कहकर हम इस पुस्तक को समाप्त करेंगे। "मा" वड़ा मधुर शब्द है, संतान मांका प्राण धन है, पुत्र शोकको समान शोक नहीं है; मातृहीन होनकी अपेक्षा दुर्भाग्यभी नहीं है। इस प्रकार दोजनों के मध्य में जो कि शारीरिक और मानसिक सम्बन्ध विद्यमान रहता है उसको प्रकाश करना वाहुल्य मात्र है पहलेही लिखा गया है और अवभी लिखते हैं कि माता के शरीर और मनकी उन्नति न होने पर संतान की उन्नति की आशा स्वप्न मात्र है। यदि इस मनुष्य जाति की उन्नति

की आखिरी सीमा लेनेकी इच्छा होतो प्रथम स्त्री जाति को उन्नत करना होगा । जिस प्रकारहो उनका शरीर और मन सुस्थ रख कर उनकी उन्नति की चेष्टा करनी होगी । स्वास्थ रक्षाके लिये जो २ करना आवश्यक है, सो २ करना होगा, जिस वृत्ति के संग शरीर का स्वास्थ सम्पूर्ण मिलाहुआ है उसी वृत्ति के कार्य को छिपाने का विषय जानकर छिपा रखना कितना (नीच) कार्य है वह इस पुस्तकमें यथा साध्य दिखाया गयाहै जिस प्रकार स्वास्थकी रक्षा करनी होती है वहभी हमने यथा साध्य इस पुस्तक में लिखा है। स्वामी के शरीर में स्त्री का शरीर सम्पूर्ण जटित है, एक जनेकी पीड़ा से दूसरेको पीड़ा होतीहै। और माताके शरीर जटित के संग संतानका शरीर जटित है, इस लिये इस पृथ्वी में एक जनेका सुख स्वच्छन्द रहना और भी अनेक जनों के ऊपर निर्भर करता है। यह सब जिस समय मनुष्य जानेंगे तो पृथ्वी भी स्वर्ग के समान दिखाई देगी। हे स्वदेशीय भगिनी गण ? तुम्हारे ऊपर इस गुरुतर कार्यका साधन बहुत निर्भर करता है। तुम्हारे एकबार आंख खोलकर देखने सेही इस पृथ्वी से रोग, शोक, ताप, यंत्रणा दूरहो जायगी ॥

औषधी और उसका परिमाण ॥

हम औषधी व्यवहार करने के बहुत पक्षपाती नहीं हैं । पारेकी औषधि किसी को भी व्यवहार करनी नहीं चाहिये, स्वास्थ रक्षा के सब नियमभलीभांति पालन करने से पीड़ा नहीं होगी और यदि हुईभी तौ अधिक दिन स्थायी नहीं होसकती । तौभी समय २ पर किसी २ पीड़ा की औषधि सेवन न करने से काम नहीं चलता, इसी लिये हमने इन सब पीड़ाओं की औषधि इस पुस्तक में लिखी है । यह सब औषधि होमियोप्याथिक के मत से लिखी गई है । अब उन्हीं सब औषधियों के परिमाण के सम्बन्ध में एक दो बात कहते हैं । होमियोपैथिक औषधी "डाइलि उसन्" × के अनुसार व्यवहार में आती है । पीड़ानुसार औषधि

× मूल औषधी दश बूंद और ९० "स्पिरट" के संग संयुक्त करके साठबार इस मिश्रित औषधि को शीशीके भीतर भरकर हाथ के ऊपर आघात करने से तब प्रथम "डाइल्यूसन,, होता है इसप्रकारकी प्रक्रियासे द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, से सहस्र पर्यन्त "डाइल्यूसन" है ॥

"डाइलिउसन् " का व्यवहार होता रहता है । तीनसे छः पर्यन्तहीका व्यवहार अच्छा है तौभी पीड़ा देखकर अधिक संख्यक "डाइलिउसनेर औषधि का व्यवहार करना चाहिये ॥

औषधिका परिमाण ।—पहले यही लिखागया है इस समय और भी स्पष्ट रूपसे लिखाजाता है । दो वर्ष से कम बालकों के लिये प्रतिवारदो 'ग्लबिउल' दो से दश वर्ष की अवस्था वाले बालक बालिका को ४ "ग्लाबिउल' इससे अधिक अवस्था का हो तो ६ "ग्लबिउल" बालक को अरक एक बूंद दस चमचे जलमें मिलाकर एक २ चमचा प्रतिवार देना चाहिये । बालक बालिका को आधी बूंद इससे ज्यादे अवस्था वाले को एक बूंद * यदि पीड़ा अधिक बोधहो तो औषधी का पन्द्रह मिनटके भीतर व्यवहार करना चाहिये यदि पीड़ा पुरानी हो तो दो तीन घण्टे के अन्तर दे ÷

औषधी की रक्षा । होमयूपैथिक औषधी सावधानी से न रखनेपर नष्ट होजाती है । कर्पूर वा किसी गंध द्रव्य के निकट किसीप्रकार भी रखनी उचित नहीं है । एक औषधी जिसपात्र में डालीजाय वह पात्र जलसे भलीभांत न धोकर अन्य औषधी उस में डालनी उचित नहीं है ॥

---

* (डा. हार्डी) ॥

÷ (प्रिंसिपिल्स मैडिसिन बाई डाक्टर मर्सी कन्ड हन्ट) ॥

साधारण औषधावली

जो सब होमियुपैथिक औषधि इस पुस्तकमें व्यवहृत हुई हैं और जो वरावर व्यवहार में आती हैं उनके नाम लिखते हैं ॥

एकोनाइट, वेलेडोना, ब्राइओनिया,
आर्शेनिक, वोराक्स, क्यालकेरिया,
आर्निका, ब्रमिन, क्याम्फर,
क्यामोमिला, क्यान्थारिस, चाइना,
सिना, कफिया, कलोसिन्थ,
डालका मारा, सिलिसिरा, होमामालिस,
हियारसाफरल, इपिकाक, नक्स भमिका,
ओपियम, फस्फरस, पलासिटिला,
सावेना, सिकेल सिपिया,
सालफर,

परिशिष्ट,

साधारण व्याधि और उसकी चिकित्सा

परिशिष्ट में कुछेक साधारण पीड़ा और उसकी औषधि लिखी जाती है। नीचे लिखी हुई औषधियों को स्त्रियें अवश्य जान रक्खें। इन औषधियों की खोज में कहीं दूर न जाना पड़ेगा। यह घर घर पाई जाती हैं। इन औषधियों के जान लेने से सर्व साधारण का महान् उपकार हो सक्ता है। न इन औषधियों में धन की आवश्यकता है, न परिश्रम की अपत्ता है। इनके व्यवहार में शंका किसी प्रकार की नहीं और उपकार विशेष है। सर्व समय चाहें किसी औषधि से कभी उपकार नहो तथापि अनेक अवसरों में लाभ पहुँच सकता है।

१ जलेहुए पर तत्काल चूना या काली रोशनाई डाल देने से जलन थम जाती है, छाला नहीं पड़ता।

२ कोई स्थान कटजाय, वा फटजाय, तो दूर्वा घास (दूब) को कुचल कर उस स्थान में भर देने से आराम हो जाता है।

३ ततैया वा शहत् की मक्खी ने काटा हो तो सरसों का तेल, मिट्टी का तेल, वा भीजी हुई मिट्टी अति शीघ्र मलने से आराम होता है।

४ पेट में दर्द होता हो तो पेटपर तेलयुक्त जल मलने से, गरम पानीसे भरी हुई बोतल के धरने से वा थोड़ासा काला नमक खाने से आराम होजाता है।

५ हाथ पांव में जलन होती हो तो फुलेल पानी में मिलाकर हाथ पांव में मले तो आराम होगा।

६ रुधिर बंद होने से तकलीफ होती हो तो सरसों के तेल में कपूर मिलाकर उस स्थान में लगाने से पीड़ा दूर होगी।

७ रगमें दर्द होता हो तो वहां पर अफीम लगाने से आराम होगा।

८ आंख दुखनें लागें तो लाल चन्दन घिस कर दोचार लगानें से आराम होता है नागल का पानी और सरसों का तेल आंजनें से भी आराम हो जाता है।

९ कान पकता हो तो गुलाब का उमदा इतर गरम करके कान में डाले तो कान को आराम होगा। कच्चे दूध को पानी में मिलाय पिचकारी देनें से भी आराम होता है।

१० पेट अफरता हो तो ८।७ काली मिर्चे मिश्री के सरबत में खाने से आरामहोगा।

११ शिर में दर्द होता हो तो कच्ची हलदी और मक्खन को मिलाय या नारियल के कच्चे फूल पीसकर लगानें से आराम होता है, मचकन के फूल भी लगाये जाते हैं।

१२ हाथ और मुँह फटे तो सरसोंका तेललगाया जाय, इससे आराम न होतो पाउडर ,, का व्यवहार करै।

१३ माथेमें जलन होतो माथे में गुलावका अरक' पानके रस या स्त्रीके स्तनोंके दूधमें मिलाकर लगावे तो आराम होगा।

१४ बद हजमी हो तो अजवायन और कालानमक मिलाकर खाने से आराम होता है।

१५ सरदी होगई होतो गरम चाह पीने और गोलमिर्च का चूर्ण गरम घीमें मिलाकर खानेसे आराम होता है।

१६ गले में दर्द होतो वहां पर चूनेका पानी गरम कर के लगावे।

१७ रातमें नींद न आती हो तो मेथी के शाककारसा पीने से नींद आती है॥

१८ जो शरीर में कहीं फुड़िया हो तो उस स्थान में जरासा चूना लगादे, आराम हो जायगा॥

१९ फोड़ा हो तो उसका दवा देनाठीक नहीं दवा देनेसे फोड़ा फिर उभर सकता है। गरम चीजें बैंगुन, पीसकर या कबूतरकी बीट लगादेने से फोड़ा शीघ्रही पकजाता है। फिर अलसीकी पुलटिस या सूजीकी पुलटिस बांधनेसे रक्त और पीव बाहर निकलजायगी॥

२० बमन होनेको हो तो पान, हरीतकी या अजवायन खानेसे आराम होता है।

२१ जो मुखसे पानी गिरताहो तो नमक मिलाहुआ पानी पीने से आराम होगा॥

२२ यदि खट्टी डकारें आतीहों, छाती में कुछ दर्द हो तो प्रतिदिन थोड़ासा चूना खाने से आराम होगा॥

२३ पेट में क्रिमि होगये हों तो अनन्नास के पत्तों की कोंपल को मिश्री के संग खाने से आराम होगा॥

२४ आंव पेटमें होजानेपर बेलभाड़में भूनकर खानेसे आंव दूरहोती है जो पेटकी पीड़ा स्थायी होगई है, बसमेंभी यही उत्तम औषधिहै

२५ सोनामुखी के पत्तों का जल, हरीतकी का पानी या अंडी का तेल अच्छाजुलाब है। बच्चों के लिये वकुलफल (वहुतथोड़ा) वा पानका डंठल गुदा के द्वारमें लगाने से भी जुलाब होजाता है॥

२६ शरीर के किसी स्थान में चोट लगने से पीड़ा होती हो तो तारपीन का तेल मलने से आराम होता है॥

२७ खांसी या और किसी कारण से छाती में दर्द हो तो पुराना घी मालिस करने से आराम होगा॥

इति॥
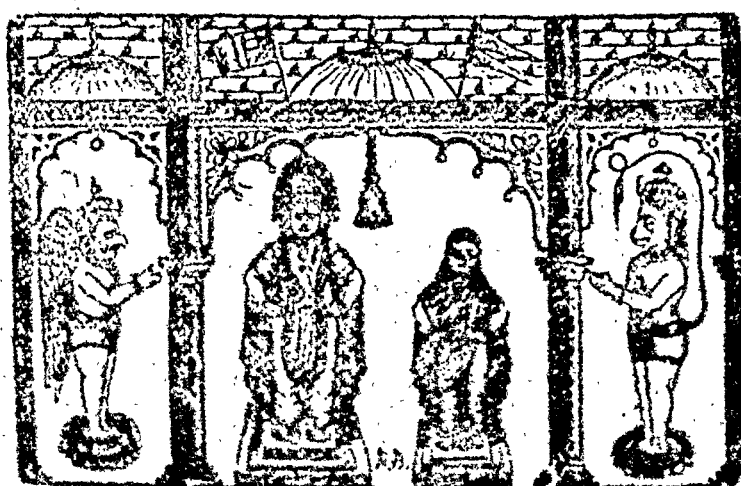
संजीवन रसायन ॥

अर्थात्

अस्थि, मज्जा, रक्त, मांसादि सातों धातुओं को पुष्ट करनेवाली अद्वितीय महौषधि ।

इस ब्रह्मशक्ति के सेवन से अत्यन्त कृश मनुष्य भी बलवान और ह पुष्ट होता है, रोग ग्रसित देह स्वस्थ होजाता है, धातु की दुर्व्वलता दू होती है, इन्द्रियों की शक्ति सौगुनी बढ़ती, है, क्षुधा चौगुनी होती उदास मन प्रसन्न होता है और कार्य्य में उत्साह उत्पन्न होता है।

जो स्त्रियें इस महौषधि को नियम पूर्वक सेवन करतीहैं उनका शरी पूर्ण. मांसयुक्त, लावण्यमय और सुडौल होजाता है, तथा रंग उज्व होने लगता है ॥

जिन स्त्रियों का प्रदर प्रमेहादि दोष, मृतवत्सा वा वन्ध्यादि दोष उनके पक्ष में यह ब्रह्मशक्ति परम सुहृद् स्वरूपा है, तथा जिन स्त्रिय को भ्रम वा मूर्छा रोग है, और जो स्त्रियें थोड़े परिश्रम में ही घब जाती हैं अथवा २० वर्षकी होतेही बुढियों की नाईं शिथिल देहवाल होजाती हैं वे एकवार इस ब्रह्मशक्ति का व्यवहार करके देखें, उन शरीर का बल और वर्ण फिर लौट आवेगा ॥

जिन पुरुषों का प्रमेह रोग बहुत काल औषधि सेवन करने से भ निर्दोष नहीं हुआ है तथा जिनको मूत्र के संग दृश्य वा अदृश्य भाव गिरती है अथवा जिनको कोई रोग घेर ही लेता है वा जिनका शरी अत्यन्त दुर्वल होगया, जरा चलने से शिर घूमने लगता है एक दोवा ऊपर नीचे करने से, सीढी पर चढने से छाती धक २ करने लगती मुख विरस रहता है, जिनके कपोलों पर लाली नहीं है वे लोग गुप्त पीड़ा से छूटने के लिये अवश्य २ इस योगीराज की दी हुई ब्रह्मशक्ति का सेवन करें । यह औषधि बल को बढाने का, देह को मोट और बलवान करने का अमोघ उपाय है तथा शुक्र के दोष प्रमेह धात की दुर्वलता आदि निवारण करने में परम सहाय है।

अधिक क्या लिखें एकवार इसदिव्य तेजस्वरूप ब्रह्मशक्तिकाव्यवहा करके देखो हाथोंहाथ प्रत्यक्ष शुभफल प्राप्तहोगा ऐसी परोपकारी औषधि का मूल्य सर्वसाधारणके हितार्थ४)रु० रक्खाहै । डांकमहसूल॥=)आने